परमार्थ-पत्रावली

[तृतीय भाग]

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ

परमार्थ-पत्रावली

[तृतीय भाग]

लेखक—

जयदयाल गोयन्दका

सत्सङ्ग छूट नहीं सकता । संसारमें सत्सङ्गके समान कोई वस्तु नहीं है। जो सत्सङ्गकी इच्छा करते हैं, उन्हें सत्सङ्ग मिलता है । इच्छा न रहनेपर प्रारब्धवश ही सत्सङ्ग मिल सकता है, परन्तु प्रारब्धके भरोसे काम चलना मुश्किल है । इसलिये इच्छा करके उसे प्राप्त करना चाहिये ।

आप तीर्थोंमें गये, परन्तु वहाँ जाकर भी आपका मन स्थिर नहीं हुआ तो फिर तीर्थोंमें जाकर आपने क्या लाभ उठाया ? तीर्थोंमें किसलिये जाया जाता है, इसपर विचार करना चाहिये। उत्तम पुरुष तो भगवत्-प्राप्तिके लिये तीर्थोंमें जाया करते हैं, मध्यम पुरुष धर्मके लिये जाया करते हैं। और उनसे भी नीची श्रेणीके लोग किसी कामनाकी पूर्तिके लिये जाते है । जो लोग भगवत्प्राप्तिके लिये तीर्थोंमें जाते हैं, उनकी दृष्टि भगवद्दर्शन प्राप्त करने, भगवद्भक्तोंद्वारा उपदेश सुनकर धारण करने और मन भगवान्में लगानेकी ओर रहती है। सो आपको भी ऐसा ही करना चाहिये। मन स्थिर करनेके लिये आपको भगवान्के नामका निरन्तर जप करना चाहिये । इससे आपका मन स्थिर हो सकता है।

[१५]

[श्रीजयदयालजीने मारवाड़ी अग्रवाल-समाजमें सगाई-विवाह आदिके अवसरपर आजकल जो फिजूलखर्ची और कुरीतियाँ बढ़ रही हैं, उसके सम्बन्धमें एक पत्रमें अपने विचार प्रकट किये हैं। यद्यपि ये विचार खास तौरसे मारवाड़ी अग्रवाल-समाजसे ही सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु फिजूल-

खर्ची और सामाजिक कुरीतियाँ तो प्राय सभी समाजोंमें हैं । इसी भाँति अन्यान्य समाजोंके विचारशील समर्थ पुरुष भी अपने-अपने समाजोंमें फिजूलखर्ची और कुरीतियाँ रोकनेका प्रयत्न करें तो सबको लाभ हो सकता है । इसी अभिप्रायसे यह पत्र यहाँ प्रकाशित किया जाता है ।
—सम्पादक]

मारवाड़ी समाजकी सामाजिक फिजूलखर्ची और कुरीतियोंके सम्बन्धमें मेरे विचार ये हैं—

हमारे मारवाड़ी-समाजमें तो वाग्दान (सगाई), विवाह और गौना आदि अवसरोंपर फिजूलखर्च और कुरीतियाँ इतनी बढ़ी हुई हैं कि यदि उन्हें ठीक-ठीक लिखा जाय तो एक पूरी पुस्तक बन जाय । यहाँ संक्षेपमें कुछ बातोंका दिग्दर्शन कराया जाता है ।

सगाईके समय पहले मुद्देके नेगका केवल १) दिया जाता था । आज उसकी जगह चोली, कब्जे और नगद मिलाकर बहुत साधारण गृहस्थके लगभग १००) खर्च हो जाते हैं, धनवानोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है ।

सगाईके बाद कचोलेके नेगमें लड़कीवाले करीब ११) दिया करते थे । अब उसकी जगह चोली, कब्जे और नगद मिलाकर मामूली गृहस्थके भी १००) से अधिक खर्च हो जाते हैं । सगाईके बाद सगोंकी मिलनीके ४) देते थे. वे अभीतक ४) ही कायम हैं, किन्तु उसके साथ एक फिजूल कुप्रथा यह चल पड़ी है कि लड़केके हाथमें लोग रुपये या गिन्नियाँ (मोहरे) देने लगे हैं । स्त्रियोंकी मिलनीके भी ५०), ६०) देने लगे हैं । इस प्रकार सब मिलाकर लगभग १००) हो जाते हैं धनियोंका तो कोई ठिकाना

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २००७ प्रथम बार १०,२५०

मूल्य ॥) आठ आना

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

विषय-सूची



परमार्थ-पत्रावली

तृतीय भाग

[१]

आपने पूछा कि जब एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द है, उसके सिवा और कुछ है ही नहीं, तब यह संसार क्यों दीख पड़ता है? सो ठीक है। जिस समय एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है, उसके सिवा और कुछ नहीं रह जाता, उस समय यह संसार किञ्चित् भी नहीं भासता। परन्तु ऐसी स्थिति यों ही नहीं, साधनाके द्वारा प्राप्त होती है। वह साधना है निरन्तर संसारके अभावका अनुभव करते हुए एकमात्र परमात्माकी सत्ताको सर्वत्र देखना। इसी साधनाका अभ्यास करनेसे उपर्युक्त स्थिति प्राप्त होती है। साधनावस्थामें जो कल्पितरूपसे संसार दीखता है, सो आनन्दमयको ही दीखता है। आनन्दमय जिस कालमें द्रष्टा होकर संसारको देखता है, संसार दीखने लग जाता है, और जब नहीं देखता तब स्वयं आनन्दमय ही रह जाता है, संसारका अत्यन्ताभाव हो जाता है; क्योंकि संसार वास्तवमें है नहीं। अथवा यों कहें कि जब आनन्दमय द्रष्टा होकर कल्पना करता है, तब बिना हुए ही संसार भासने लगता है और जब वह संसारको कल्पनामात्र जानकर अपना सङ्कल्प छोड़ देता है,

तब संसारका अभाव होकर केवल आनन्दमय परमात्मा ही रह जाता है।

आपने पूछा कि 'मैं कौन हूँ ?' इसका उत्तर यह है कि जबतक भ्रम है तबतक आप जीव हैं। जब यह भ्रम मिट जाता है, तब 'मैं' का सर्वथा अभाव हो जाता है और एकमात्र आनन्दमय परमात्मा ही रह जाता है।

परमात्माकी प्राप्ति दो प्रकारसे होती है—एक सगुणरूपसे, दूसरे निर्गुणरूपसे। सगुणकी भिन्न रूपसे और निर्गुणकी अभिन्नरूपसे प्राप्ति होती है। अस्तु,

यह सब ध्यानमें रखकर आपको विशेषरूपसे साधनकी चेष्टा करनी चाहिये। साधनकी चेष्टा धन कमानेकी चेष्टासे अत्यधिक बलवती होनी चाहिये। साधनकी चेष्टाके लिये एक बार ही विशेषरूपसे प्रयत्न करना होगा, फिर तो उसमें आनन्दका अनुभव होनेके बाद आप-से-आप तीव्र चेष्टा होने लगेगी।

[२]

आपने लिखा कि अमुक स्थानमे ध्यानकी जैसी स्थिति थी, वैसी अब नहीं है; सो इसके कारणपर आपको स्वयं विचार करना चाहिये और जो त्रुटियाँ हों उन्हें दूर करके पुनः वैसी स्थिति, बल्कि उससे भी अधिकाधिक अच्छी स्थिति प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। भगवान्‌का गुणानुवाद करने, उनके प्रभाव-रहस्य आदिकी बातें बाँचने-सुनने तथा नाम-जप करनेका अभ्यास निरन्तर हो—इसके लिये उत्कण्ठापूर्वक तीव्र चेष्टा होनी

चाहिये । इस चेष्टाके लिये यदि आपके पास निजका बल कम है, तो कोई चिन्ताकी बात नही । नारायणके चरणोंका आश्रय लेकर, हृदयमें विश्वास रखकर प्रयत्न करते रहिये, फिर भगवत्-कृपासे आप-से-आप सब ठीक हो सकता है ।

आपने लिखा कि अमुक स्थानमे ध्यान-धारणाकी जैसी स्थिति थी, वह मेरे पुरुषार्थकी नही थी, सो ठीक है । ऐसा समझना बहुत उत्तम है, परन्तु आप अपनी ध्यान-धारणाकी उस स्थिति-को जिसकी कृपाका फल समझते हैं, उसकी पूर्ण कृपा तो अब भी उसी प्रकार बनी हुई है । फिर वे आपको ध्यान-धारणाकी उसी स्थितिमें क्यो न ला देंगे ? यदि नही लाते तो न लावें, आप अपनी ओरसे जहॉतक हो सके उन श्रीनारायणदेवके भजन-ध्यानकी ही चेष्टा करते रहिये, क्योंकि आपका कर्तव्य यही है । फिर आपका यह सतत कर्तव्य-पालन ही आगेकी स्थिति सुधार देगा । क्योंकि कर्तव्यपरायण अथवा पुरुषार्थी व्यक्तिका ध्यान वे स्वयं रखते है ।

आप भक्ति-ज्ञान-वैराग्यविषयक पुस्तकोंको देखनेकी चेष्टा करते हैं, सो ठीक है । जब-जब भजन-ध्यानमे अधिक भूलें हों, तब-तब सद्ग्रन्थोंको बॉचने-सुनने तथा भगवद्भक्तोंका सत्सङ्ग करनेकी चेष्टा करनी चाहिये । वास्तवमें प्रेमके अभावके कारण ही भूलें अधिक होती है । सो विश्वासपूर्वक भजन और सत्सङ्ग करते रहना चाहिये, फिर उन्हींके द्वारा भूलोंका निवारण और प्रेमका उदय हो सकता है । आपका यह लिखना कि भजन-ध्यानकी स्थिति रखनेमें काम-काज नहीं होता और सांसारिक काम-काज करते रहनेपर भजन-ध्यानमें भूलें अधिक

होती हैं, ठीक है। इसका एकमात्र उपाय नारायणका स्मरण है। काम-काजमें यदि कुछ कमी आवे तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये, बल्कि सब कुछ नारायणकी ही मर्जीसे हो रहा है, ऐसा मानकर प्रसन्न मनसे तत्परतापूर्वक भजन-साधन करते रहना चाहिये।

शरणागतिकी बातें गीताके १८ वें अध्यायके ६२ और ६६ वें श्लोकोंमें हैं, उन्हें देखना चाहिये। चिट्ठीमे विशेष विस्तारसे लिखा जाना कठिन है; फिर भी कुछ बातें लिखी जाती हैं। शरणागति चाहनेवालेको मनसे भगवान्‌के सच्चिदानन्दघनस्वरूपका चिन्तन, बुद्धिसे सर्वत्र नारायणकी ही सत्ताका विचार, श्वाससे भगवन्नामका जप, वाणीसे भगवान्‌का गुणानुवाद, कानोंसे भगवत्कथा-कीर्तनका श्रवण, नेत्रोंसे भगवद्भक्तोंका दर्शन और शरीरसे संतमहात्माओं, गुरुजनों एवं सर्वभूतरूप भगवान्‌की सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये। यह समझना चाहिये कि माता, पिता, भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्र, धन इत्यादि सब कुछ नारायण-का ही है; मेरा कुछ भी नहीं है—यहाँतक कि मेरा शरीर भी उन्हींका है। फिर ऐसा समझते हुए जो कुछ करना हो, भगवत्-सेवाके भावसे करना चाहिये। आसक्ति किसी पदार्थमें नहीं रखनी चाहिये। अपनी इच्छाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, उन्हींकी इच्छामें अपनी इच्छा मिला देनी चाहिये। संसार वास्तवमें नाशवान् है; परन्तु यदि यह सत्य मालूम पड़ता है तो उसमें आनन्दमय भगवान्‌को देखना चाहिये तथा चेष्टामात्रमें सर्वत्र लीलाका भाव करना चाहिये। प्रणव अर्थात् 'ॐ' परमेश्वरका नाम है, उसके अर्थ अर्थात् सत्-चित्-आनन्दघनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। सच्चिदानन्दघनके सिवा कुछ है ही नहीं, इसकी

धारणा करनी चाहिये। अनन्त, अपार, अचिन्त्य आनन्दमें मग्न हो जाना चाहिये। संसारमें जो कुछ भासता हो, उसे स्वप्नवत् मानकर अविचल, अपार, शान्त एवं व्यापक आनन्दमय परमात्माको कभी भूलना नहीं चाहिये। शरीर एवं संसारके समस्त पदार्थ विनाशशील हैं, इनके लिये हर्ष-शोक नहीं करना चाहिये। ममता, मोह, लोभ, स्वार्थ, अहङ्कार, कर्तृत्वाभिमान आदि सबको छोड़ देना चाहिये। पासमें जो कुछ हो, उसे नारायणके लिये न्योछावर कर देना चाहिये। उनके स्मरण-चिन्तनमें अपनेको विलीन कर देना चाहिये। इस प्रकार शरणागतिकी बहुत-सी बातें हैं। इन सबकी साधना अनन्यभावसे करनी चाहिये। फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं है।

[३]

इतने दिन हो गये, अभीतक आपने भगवान्‌की प्राप्ति नहीं की, तब फिर क्या लिखा जाय ? किस बलपर आप निश्चिन्त होकर बैठे हैं ? विश्वास कीजिये—जीवनका कुछ भी ठिकाना नहीं है, यह शरीर किसी भी क्षण मिट्टीमें मिल जानेवाला है, संसारके अन्य समस्त पदार्थ भी विनष्ट होनेवाले हैं, फिर आप इन विनश्वर वस्तुओंके लिये अपने अनमोल समयको क्यों बिता रहे हैं ? परमात्माकी प्राप्तिके प्रयत्नोंमें आनन्द-ही-आनन्द है, परन्तु यदि कुछ समयके लिये कष्ट ही उठाना पड़े और उससे सदाके लिये

भगवत्प्राप्तिद्वारा अपार आनन्द हो जाय तो उस कष्टका प्रसन्नतापूर्वक वरण करना चाहिये । इस नाशवान् संसारके थोड़े समयके आरामसे यदि चौरासी लाख वार गलेमे फाँसी पड़ती हो तो उसे तत्काल छोड़ देना चाहिये । इस क्षणभङ्गुर शरीरमें यदि चार-पाँच सेर मांस अधिक हो जाय तो क्या और कम हो जाय तो क्या ? अच्छे कपड़े पहननेको मिले तो क्या और मामूली कपड़े पहननेको मिले तो क्या ? सूखी रोटी खायी तो क्या और बढ़िया-बढ़िया पकान्न खाये तो क्या ? बहुमूल्य मखमलके बिछौनेपर सोये तो क्या और चटाईपर सोये तो क्या ? जो इन सबको समान मानता है, जिसके दिन नारायणके प्रेममें बीतते हैं, जिसका चित्त नारायणके स्मरण-चिन्तनमें रमा हुआ है, वही मनुष्य धन्यवादके योग्य है; नहीं तो मानव-जन्म व्यर्थ है, बल्कि उस मनुष्यसे पशु भी अच्छे हैं । अतः अबसे भी चेतिये । मैं यह बार-बार कहूँगा कि जिसने मनुष्यका शरीर पाकर नारायणको नहीं भजा, उनकी प्राप्ति नहीं की, उसे मानव-जन्म ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी ।

[४]

आपका पत्र मिला । भजन करनेके चार साधन लिखे जाते हैं । इनको ध्यानमें रखना चाहिये—

(१) श्वासद्वारा भगवन्नामका जप करना चाहिये ।

(२) जिसके नामका जप करें, उस नामीके स्वरूपका मनसे चिन्तन करना चाहिये; अर्थात् स्वरूपके ध्यानसहित

नामका जप करना चाहिये । यदि सगुणवाचक नाम हो तो सगुणरूपका ध्यान करते हुए अथवा निर्गुणवाचक नाम हो तो सत्-चित्-आनन्द आदि विशेषणोंके सहित निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करते हुए नाम-जप करना चाहिये ।

(३) सर्वव्यापक परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहते हुए समष्टि बुद्धि—ज्ञानचक्षुओंद्वारा संसार, शरीर और कर्मोंका द्रष्टा-साक्षी रहना चाहिये । अहङ्कार और कर्तृत्वाभिमानका त्याग कर देना चाहिये । इन्हींसे अन्तःकरणमें राग-द्वेषादि विकारोंका उदय होता है । और जबतक अन्तःकरणमें इन विकारोंका अनुमान हो तबतक सर्वव्यापी परमात्माके स्वरूपमें स्थित होनेमें कमी समझनी चाहिये ।

(४) चित्तको सदा प्रफुल्ल रखना चाहिये । बिना हुए भी प्रफुल्लताका अनुभव करना चाहिये ।

चौथी बात प्रथम श्रेणीके अर्थात् नये साधकके लिये है । ऊपरकी तीनों स्थितियोंमें स्थित रहनेसे स्वतः प्रसन्नता बनी रहती है, साथ ही हृदयमें निर्मलता, शरीरमें हल्कापन, दृश्य जगत्में सत्ताका अभाव, इन्द्रियोंमें चेतनता, आलस्यका अभाव, वैराग्यकी वृद्धि इत्यादि बातें भी आप-से-आप आ जाती हैं ।

भजन जितना हो, बहुमूल्य होना चाहिये । जो भजन निष्कामभाव तथा गुप्तरीतिसे और ध्यानके साथ निरन्तर होता है, वही बहुमूल्य भजन है । सो निष्काम भाव और गुप्तरीतिकी दृष्टिसे तो आपलोगोंका भजन ठीक ही मालूम

इस समय भगवान्की प्रेरणा भक्तिमार्गकी उन्नति करनेके लिये है। अतः इस समय भक्तिमार्गसे बहुत जल्द उद्धार हो सकता है। ऐसा मौका सदा नहीं रहेगा। जब दूकानदारको माल बेचनेकी गरज होती है, तब चीजें बहुत मंदी बिकती हैं। और जब उसे गरज नहीं होती, तब बहुत ऊँचा दाम देनेसे तथा कोशिश करनेसे भी चीज नहीं मिलती। ऐसा समझकर इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देना चाहिये।

भगवान्का भक्त इच्छा करे तो वह अकेला ही हजारों मनुष्योंका उद्धार कर सकता है, जैसे एक धर्मात्मा पुरुष हजारों मनुष्योंके सहित डूबती हुई नौकाको पार लगाना चाहे तो लगा सकता है। भक्तराज प्रह्लादपर प्रसन्न होकर भगवान्ने जब उन्हें वर माँगनेको कहा तो उन्होंने सबके उद्धारके लिये प्रार्थना की। सबका उद्धार न होनेपर भी उनके द्वारा हजारों आदमियोंका उद्धार अवश्य हुआ। अतः कटिबद्ध होकर विश्वासके साथ भक्तिके साधनमें लग जाना चाहिये।

[६]

आपने चित्त स्थिर होनेका उपाय पूछा, सो ठीक है। चित्त स्थिर करनेके कुछ उपाय नीचे लिखे जाते हैं। जो उपाय जँचे, उसे काममें लाना चाहिये। यदि आप एक भी उपायको कटिबद्ध होकर काममें लायँगे तो उससे बड़ा लाभ हो सकता है। उपाय ये हैं—

द्वारा स्वार्थसाधन करना ऐसा ही है, जैसे किसीको हीरा-मणि देकर बदलेमें पत्थर लेना है। इसलिये नाम-जपके साथ कोई शर्त नहीं रखनी चाहिये।

(५) ऊपर लिखे अनुसार नाम-जपका अभ्यास निरन्तर करना चाहिये। कभी भी उसका तार नहीं टूटने देना चाहिये। अभ्यास बढ़ जानेपर काम-काज करते हुए भी निरन्तर नाम-जप किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार चरखा कातनेवाली स्त्री सूत कातती जाती है, उसका तार नहीं टूटने देती और दूसरोंसे बातें भी करती जाती है।

संवत् १६०० के आस-पास इस देशमें अनेकों भक्तोंका प्रादुर्भाव हुआ। उन्होने समयको कुछ सुधारा था। जब समय कुछ अधिक गिर जाता है, तब भगवान् अपने भक्तोंको प्रेरणा करके उनके द्वारा समयका सुधार करवा देते हैं। और जब पाप बहुत अधिक बढ़ जाता है, तब भगवान् स्वयं अवतार लेकर पृथ्वीका भार हलका करते तथा धर्मकी स्थापना करते है। इन दिनों कलियुगका प्रभाव विशेषरूपसे फैल गया है। इसलिये भक्तोंको भगवान्‌की प्रेरणा होती है कि समयको सुधारना चाहिये। ऐसा अवसर पाकर भी जो अपने उद्धारका प्रयत्न नहीं करेंगे, वे मन्दबुद्धि समझे जायँगे तथा जन्म-मरणके चक्करसे छूट नहीं सकेंगे। रामचरित-मानसका यह दोहा याद रखनेयोग्य है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

इस समय भगवान्‌की प्रेरणा भक्तिमार्गकी उन्नति करनेके लिये है। अतः इस समय भक्तिमार्गसे बहुत जल्द उद्धार हो सकता है। ऐसा मौका सदा नहीं रहेगा। जब दूकानदारको माल बेचनेकी गरज होती है, तब चीजें बहुत मंदी बिकती हैं। और जब उसे गरज नही होती, तब बहुत ऊँचा दाम देनेसे तथा कोशिश करनेसे भी चीज नहीं मिलती। ऐसा समझकर इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देना चाहिये।

भगवान्‌का भक्त इच्छा करे तो वह अकेला ही हजारों मनुष्योंका उद्धार कर सकता है, जैसे एक धर्मात्मा पुरुष हजारों मनुष्योंके सहित डूबती हुई नौकाको पार लगाना चाहे तो लगा सकता है। भक्तराज प्रह्लादपर प्रसन्न होकर भगवान्‌ने जब उन्हें वर माँगनेको कहा तो उन्होंने सबके उद्धारके लिये प्रार्थना की। सबका उद्धार न होनेपर भी उनके द्वारा हजारों आदमियोंका उद्धार अवश्य हुआ। अतः कटिबद्ध होकर विश्वासके साथ भक्तिके साधनमें लग जाना चाहिये।

[६]

आपने चित्त स्थिर होनेका उपाय पूछा, सो ठीक है। चित्त स्थिर करनेके कुछ उपाय नीचे लिखे जाते हैं। जो उपाय जँचे, उसे काममें लाना चाहिये। यदि आप एक भी उपायको कटिबद्ध होकर काममें लायेंगे तो उससे बड़ा लाभ हो सकता है। उपाय ये हैं—

जायगा। श्वास रोकते समय इसका ध्यान रखना चाहिये कि शक्तिसे अधिक श्वास न रोका जाय।

(६) जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करना चाहिये। उसका ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि कीर्तनका तार न टूटने पावे।

और भी बहुत-से उपाय हैं। आप इन उपायोंका अभ्यास करके देख लीजिये। जो अनुकूल पड़े, उसीका अभ्यास करनेसे ठीक रहेगा। पहले-पहल अभ्यास करनेवालेके लिये दूसरे-तीसरे नम्बरके उपाय ठीक हैं।

---

[७]

आपने लिखा कि रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराजके चरण-कमलोंमें मन लगे, ऐसी कृपा करनी चाहिये, सो कृपा करना एकमात्र कृपालु प्रभुका ही काम है, इसलिये उन्हींकी शरण लेनी चाहिये। मेरे सुनने-समझनेमें ऐसा आया है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराजके नामका जप करनेसे ही उनके चरणोंमें मन लगता है। इसलिये निरन्तर उनके नामका जप करना चाहिये। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी यही कहा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

(१) जहाँ-जहाँ चित्त जाय, वहाँ-वहाँसे उसको हटाकर भगवान्में लगाना चाहिये।

(२) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ मनसे भगवान्का नाम बाँचना चाहिये। सर्वत्र भगवान्का नाम लिखा हुआ देखना चाहिये। जिस प्रकार हनुमान्जीने प्रत्येक वस्तुमें भगवन्नाम देखा था, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यके रोम-रोममें, प्रत्येक वस्तुके अणु-अणुमें भूषणमें रत्नकी तरह भगवान्के नामको जड़ा हुआ देखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा अभ्यास करनेसे मन स्थिर हो सकता है।

(३) जहाँ-जहाँ मनकी गति हो, वहाँ-वहाँ गोपियोंकी तरह भगवान्की मनोमोहिनी मूर्तिको देखना चाहिये। अपने मनको दृढ़तापूर्वक यह समझा देना चाहिये कि मेरे इष्टदेव सर्वत्र हैं, जहाँ भी जाओगे वहीं तुम्हें उनके दर्शन होंगे। ऐसा अभ्यास करनेसे आप-से-आप मन स्थिर हो जायगा।

(४) जहाँ-जहाँ जो कुछ भासता है, वह सब नाशवान् है— ऐसा समझना चाहिये। प्रतिक्षण मनके द्वारा इस बातका चिन्तन करना चाहिये कि संसारकी समस्त वस्तुएँ क्षणभङ्गुर हैं, केवल सच्चिदानन्दघन श्रीनारायणदेव ही सत्तावान् हैं और वे सर्वत्र व्याप्त हैं।

(५) श्वास बाहर आनेपर उसे बाहर ही रोककर हृदयमें स्थित सुषुम्ना नाड़ीमें राम-नामका जप सुनना चाहिये। उसको सुननेका अभ्यास करनेसे राम-नामके जपका अनुभव होने लगेगा। फिर उसका ध्यान होने लगेगा और इस प्रकार मन स्थिर हो

जायगा । श्वास रोकते समय इसका ध्यान रखना चाहिये कि शक्तिसे अधिक श्वास न रोका जाय ।

(६) जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करना चाहिये । उसका ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि कीर्तनका तार न टूटने पावे ।

और भी बहुत-से उपाय हैं । आप इन उपायोंका अभ्यास करके देख लीजिये । जो अनुकूल पड़े, उसीका अभ्यास करनेसे ठीक रहेगा । पहले-पहल अभ्यास करनेवालेके लिये दूसरे-तीसरे नम्बरके उपाय ठीक हैं ।

---

[७]

आपने लिखा कि रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराजके चरण-कमलोंमें मन लगे, ऐसी कृपा करनी चाहिये, सो कृपा करना एकमात्र कृपालु प्रभुका ही काम है, इसलिये उन्हींकी शरण लेनी चाहिये । मेरे सुनने-समझनेमें ऐसा आया है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराजके नामका जप करनेसे ही उनके चरणोंमें मन लगता है । इसलिये निरन्तर उनके नामका जप करना चाहिये । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी यही कहा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें । करतल गत न परहिं पहिचानें ॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें । आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥

भगवान्के नाम-जपके प्रतापसे न जाने कितने पापी पवित्र हो गये। नाम-जपमें केवल निष्काम प्रेमकी ही आवश्यकता है, भगवान्को भक्ति ही प्रिय है। प्राचीन कालमें भक्तिके प्रतापसे बहुत-से भक्त परमधामको चले गये। इसीलिये किसी कविने कहा है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥*

इसलिये भगवान्में प्रेम बढ़ाना चाहिये। प्रेम ही भक्तिका स्वरूप है। अतएव निरन्तर प्रेमसहित नाम-जप करनेका अभ्यास करना चाहिये।

* व्याधका कौन-सा (अच्छा) आचरण था? ध्रुवकी आयु ही क्या थी? गजेन्द्रके पास कौन सी विद्या थी? कुब्जाका ऐसा क्या विशेष रूप था? सुदामाके पास कौन-सा धन था? विदुरका कौन उत्तम वंश था? यदुपति उग्रसेनका कौन-सा पुरुषार्थ था? भक्तिप्रिय माधव तो केवल भक्तिसे ही सन्तुष्ट होते हैं, गुणोंसे नहीं।

मैंने आपसे पूछा था कि चिट्ठी पढ़ते समय व्यष्टि अन्तः-करणमें किसी प्रकारका भाव यानी विकार होता है या नही, उसको आप भय समझ गये सो भयकी तो कोई बात ही नहीं है। मेरा पूछना तो यह है कि जिस समय आप चिट्ठी बाँचते हैं, उस समय व्यष्टि अन्तःकरणमें किसी प्रकारका भाव अर्थात् हर्ष, सङ्कोच इत्यादि होता है या नही। आपने लिखा कि बड़ाई होनेपर व्यष्टि अन्तःकरणमें किञ्चित् विकारका आभास-सा पड़ता है सो ठीक है, किंतु वह भी नही पड़ना चाहिये। चिट्ठियोंमें मै जो आपका नाम लिखा करता हूँ, उस नामका वाच्य कौन है ? अर्थात् आपका अमुक नाम किसका नाम है ? आप अपनेको क्या समझते हैं ? जब कोई आपका नाम लेकर पुकारता है, तब उस नामका मालिक कौन बनता है ? आपने लिखा कि एकमात्र सच्चिदानन्दका भाव तथा अन्य सबका अभाव होकर शरीरके स्थानपर भी आनन्द ही परिपूर्ण हो रहा है, सो इस प्रकारके भावका ज्ञाता कौन है ? सच्चिदानन्द परमात्मा तो देश-कालसे रहित हैं, फिर शरीरके स्थानपर आनन्दघन हो रहा है—ऐसा कहना बनता नहीं। क्योंकि शरीरका स्थान भी कल्पित ही है, उसके स्थानका नाम देश है और परमात्मा देशवाले हैं नही। देश, काल और वस्तु—जो कुछ भी दृश्य पदार्थ प्रतीत होता है, और जो कुछ भी अन्तःकरणके चिन्तनमें आता है, सो सब कल्पित है। सत्ता केवल बोध अर्थात् ज्ञानस्वरूपकी ही है और जो ज्ञान है, वही आनन्द है। किंतु परमात्मा भोगे जानेके योग्य आनन्द नही हैं अर्थात्

परमात्माका जो आनन्दमय स्वरूप है, वह किसीका ज्ञेय अथवा भोग्य नहीं है। वह स्वयं बोधस्वरूप है, अतएव वही आनन्द है। बोधसे आनन्द भिन्न वस्तु नहीं है। बोधस्वरूप परमात्मा अपने-आप हैं, उनके सिवा और कुछ है ही नहीं—ऐसा वेद-शास्त्र और संत-महात्मा कहते हैं।

अन्तःकरण अर्थात् मनमें जो कुछ दृश्य पदार्थ भासता है, वह सब मनका ही स्वरूप है। मन वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है। वह मायाका कार्य है और बिना हुए जो प्रतीत होता है, उसका नाम माया है। इसलिये जो कुछ प्रतीत होता है, वह वास्तवमें है नहीं। सत्य तो एकमात्र सच्चिदानन्दघन परमात्मा है, परन्तु वह किसीको प्रतीत नहीं होता, क्योंकि वह किसीका विषय नहीं है। वह स्वयं बोधस्वरूप है और बोधस्वरूप होकर ही दृश्य संसारका द्रष्टा हो रहा है। दृश्य संसारकी स्थिति अज्ञानमें है—जिस समय यह बात समझमें आ जायगी, उस समय दृश्य असत् संसारका अत्यन्त अभाव हो जायगा अर्थात् उसके चित्रका लोप हो जायगा। फिर द्रष्टामें द्रष्टापनका भाव नहीं रह जायगा; क्योंकि जब दृश्य ही नहीं है, तब द्रष्टा किसका? फिर केवल विज्ञानानन्दघनके सिवा और कुछ रहता ही नहीं। इसीको वेद और शास्त्र सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्ति कहते हैं।

आपने लिखा कि सर्वव्यापीमें भी अहंभाव नहीं समझा जाता, एकमात्र परमात्माके होनेका ही निश्चय होता है, सो इस प्रकारका निश्चय और सर्वव्यापित्वका ज्ञान किसको है? जिस समय ऊपर लिखे अनुसार केवल विज्ञानानन्दघन

परमात्मा ही रह जाता है, उस समय 'सर्व' और 'व्यापक' शब्द भी नहीं बनते तथा परमात्माके होनेका निश्चय करनेवाला भी कोई नहीं रह जाता, उस समय केवल बोध ही रह जाता है। वह बोध ही आनन्द है और इतना घन है कि उसमें और किसीका होना बन ही नहीं सकता।

आपको साधनकी अवस्थाका अनुमान कैसा होता है? अब आप अपने लिये क्या कर्तव्य समझते हैं? व्यष्टि अन्तःकरण-में यदि कोई स्फुरणा होती है तो वह सत्ताके अभावको लेकर ही होती होगी? आपने लिखा कि समष्टिमें भी 'मैं' का भाव होना नहीं समझा जाता, सो बड़े आनन्दकी बात है। फिर भगवत्प्राप्ति-में क्या त्रुटि है? ध्यानकी स्थिति सब समय समान भावसे होती है या सामान्यविशेष भावसे होती है? सब समय एक-सी ही स्थिति होनी चाहिये।

[९]

आपने नाम-जपमें भूल होनेकी बात लिखी, सो सत्सङ्ग और शास्त्रद्वारा भगवान्‌के गुण और प्रभावकी बातें जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌का गुण-प्रभाव जान लेनेपर उनके नाम-जपमें भूल नहीं हो सकती। आपने लिखा कि भजनमें भूल होनेपर जब उसकी याद आती है तब पश्चात्ताप होता है परन्तु उसका निरन्तर स्मरण नहीं रह पाता, सो ठीक है। अभ्यासके द्वारा अभ्यास बढ़ता है। यदि उत्साहके साथ चेष्टा की जाय तो उससे सङ्कल्प-विकल्प मिटकर एवं चिन्ताका नाश होकर

भगवान्‌के स्वरूपमें रमण हो सकता है। भगवान्‌के भजन-ध्यानकी लगनके समान संसारमे कोई वस्तु नही है। लगन उसीका नाम है, जिसमें अपने शरीरका भी ज्ञान न रहे। भगवान्‌के प्रति प्रेम बढ़ानेमें अपना तन, मन, धन, सब कुछ लगा देना चाहिये। भजन-सत्सङ्गका तीव्र अभ्यास करनेसे पापोंका जल्दी ही नाश हो सकता है। भजन निष्कामभावसे ही होना चाहिये। सत्सङ्ग और भजनके द्वारा संसारकी मिथ्या वस्तुओंकी इच्छा न रखना ही निष्कामभाव है। मृत्युको हर समय याद रखना चाहिये। सम्पूर्ण संसार तथा शरीरको क्षणभङ्गुर समझना चाहिये। भगवान्‌के नामका जप और उनके स्वरूपके ध्यानका अभ्यास तेज होना चाहिये। पीछे कोई हर्ज नहीं। भजन-ध्यान करनेपर यदि भगवान् इस जन्ममें नहीं मिलेंगे तो दूसरे जन्ममें उत्तम योनि तो मिलेगी ही. पूर्वसंस्कारवश दूसरे जन्ममें भजन-ध्यान और भगवान्‌में प्रेम होगा और फिर भगवान् मिल जायँगे। इस प्रकार दूसरा भी जन्म हो तो कोई हानिकी बात नहीं है। परन्तु चेष्टा तो ऐसी ही करनी चाहिये कि इसी जन्ममें भगवान् मिल जायँ। मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसीके अनुसार उसको योनि मिलती है. परन्तु भगवान्‌के भजन-ध्यानका प्रताप ऐसा है कि वह नीच कर्म करनेवालेके भी पापोंका नाश कर देता और उसको उत्तम योनि तथा उत्तम लोकमें ले जाता है। जिनका भजन-साधन बहुत तेज हो जाता है, उनको भगवान् यहीं इसी जन्ममें मिल जाते हैं, उन्हें फिर जन्म नहीं धारण करना पड़ता. वे भगवान्‌के परमधामको चले जाते हैं। परन्तु जो मनुष्य जान-बूझकर पाप करता है और यह सोचता है कि पीछे भजन-साधनके द्वारा पापोंको नष्ट कर दूँगा, वह धोखा खाता है। उसके

पापोंका नाश तभी होगा, जब वह उनका फल-भोग कर लेगा। इसलिये भजनका सहारा लेकर जान-बूझकर पाप नहीं करना चाहिये। जो पाप पहले अनजानमें हो गये रहते हैं, उन्हींका नाश भजन-ध्यानके साधनसे हो सकता है। इसलिये श्रद्धा, विश्वास और सदाचारपालनपूर्वक भजन-ध्यान तथा सत्सङ्गका साधन तीव्ररूपसे करना चाहिये। मनुष्य-जन्म केवल पेट भरनेके लिये ही नहीं मिला है। पेट भरनेके लिये तो कीट, पतङ्ग, कूकर, शूकर, गधे और कौए भी आयुपर्यन्त चेष्टा करके योनि बदलते रहते हैं। यदि मनुष्यने भी उन्हींकी तरह जन्म बिताया तो उसका जन्म ग्रहण करना व्यर्थ है। ऐसे जन्मको धिक्कार है। मानव-जन्म बड़ा अनमोल है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको उसका फल पानेकी चेष्टा करनी चाहिये, उसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। भगवान्‌की प्राप्ति ही मनुष्य-जन्मका एकमात्र चरम फल है।

[१०]

आपने लिखा कि भगवन्नामका जप अधिक नहीं हो पाता, दूकानके काम-काजके सङ्कल्प अधिक रहते हैं, सो ठीक है। ऐसी स्थितिमें सावधान होकर जपका अभ्यास बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये। दूकानका काम करते हुए जप करनेमें कुछ लगता नहीं है। दूकानके काम-काजके सङ्कल्प होते हैं तो भले ही हों, जप अधिक करना चाहिये उससे आप-से-आप सङ्कल्प कम हो सकते हैं।

आपने लिखा कि दूकानके काम-काजमें लोभके कारण झूठ अधिक बोलना पड़ता है सो यह बड़ी हानिकर बात है। असली

वस्तु नारायण ही हैं, उन्हींका लोभ करना चाहिये। रुपया प्रारब्धमें जितना लिखा होगा, उतना ही मिलेगा। फिर उसके लिये अन्याय क्यों किया जाय ? झूठ बोलनेसे रुपये ज्यादा नहीं मिल सकते, उलटे पाप लगता है। यह मनका भ्रम है, जो ऐसा प्रतीत होता है कि झूठ बोलनेसे रुपये मिलते हैं। इस बातपर आपका विश्वास न हो तो बात अलग है। यदि कदाचित् अन्याय-से रुपये पैदा भी होंगे तो उनसे सुख नहीं मिलेगा। अन्यायका, पापका फल दुःख-ही-दुःख होता है। इसलिये पापके द्वारा रुपये पैदा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपको सब प्रकारसे विचार करके झूठसे बचना चाहिये। चिन्ता नहीं करनी चाहिये। निष्कामभावसे भगवान्‌के नाम-जप तथा सत्सङ्ग-का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। उससे आप-से-आप व्यवहार सुधर जाया करता है। इसलिये भजन-ध्यान और सत्सङ्गकी चेष्टा ही विशेषरूपसे करनी चाहिये।

आपने लिखा कि दूकानके काममें फँस जानेसे भजन-ध्यान और सत्सङ्ग कम होता है, फलतः मुझ-जैसे मनुष्यका उद्धार होना बहुत कठिन है; सो इस प्रकारका भाव नहीं लाना चाहिये। निष्कामभावसे किये जानेवाले भजन-सत्सङ्गकी अपार महिमा है, उसके प्रतापसे, चाहे कोई कैसा भी पापी हो, उसका उद्धार होना बड़ी बात नहीं है। आप भजन-सत्सङ्गको ही मुख्य मानिये। मुख्यतः भजन-सत्सङ्ग करते हुए दूकानका काम चाहे जितना कीजिये, फिर कोई हर्जकी बात नहीं है। भजनमें प्रेम होना चाहिये, फिर दूकानका काम करते हुए भी बहुत अच्छी तरहसे भजन हो सकता है।

[११]

भाईजी, अभीतक आप लोगोंको भगवान्‌की ओर लगनेके आनन्दका बहुत कम ज्ञान है, क्योंकि आप लोग संसारके मिथ्या आनन्दको आनन्द मान रहे हैं। जबतक मिथ्या मायाका जाल छिन्न-भिन्न नहीं हो जाता, जबतक मिथ्या मायाकी फाँसी कट नहीं जाती, तभीतक भोगोंका आनन्द सच्चा मालूम होता है। और जबतक मिथ्या आनन्द सच्चा मालूम देगा तबतक उसके लोभमें फँसकर, विषय-भोगोंका सर्वनाशक विष खाकर चौरासी लाख बार जन्म-मरणके चक्करमें पड़ना पड़ेगा। इसलिये उसका उपाय करना चाहिये। संसारके मिथ्या विषय-भोग मृत्युकी भाँति तिरस्कार करने योग्य हैं। जिस प्रकार कोई बुद्धिमान् रोगी वैद्यकी बात मानकर मृत्युकारक कुपथ्यका त्याग कर देता है, उसके सामने मीठे-से-मीठा, सुस्वादु-से-सुस्वादु पदार्थ क्यों न हो, यदि वह यह जान लेता है कि उससे उसकी मृत्यु हो जायगी तो फिर उसका सेवन नहीं करता, उसी प्रकार यदि कोई बुद्धिमान् मनुष्य सांसारिक मिथ्या भोगोंको मृत्युस्वरूप समझकर त्याग देता है और किसी सद्‌गुरुकी दी हुई रामनामकी बूटीका निरन्तर सेवन करता है तो उसका भव-रोग तत्काल नष्ट हो जाता है और उसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। फिर माया उसके पास नहीं जा सकती। जिस प्रकार सन्निपातके रोगीको भ्रम अर्थात् विपरीत भाव हो जाता है और वह मृत्युको प्राप्त होता है, उसी प्रकार संसारासक्त मनुष्योंको भी मोहरूपी सन्निपात हो रहा है, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है। इसलिये उन्हें किसी सद्वैद्यकी दी हुई सञ्जीवनी बूटीका निरन्तर सेवन

करना चाहिये। जैसे भी हो सके, इसके लिये समय निकालना ही चाहिये। नहीं तो वीमारी दिन-दिन अधिक होती जा रही है। समय थोड़ा रह जायगा और वीमारी असाध्य हो जायगी तो फिर वैद्य भी जवाब दे देगा। ऐसे वैद्य विरले ही होते हैं जो वीमारी वहुत बढ़ जानेपर, मृत्युके अत्यन्त निकट आ जानेपर भी किसी रोगीको अपने जिम्मे लेते हैं। अतः यह समझकर जल्दी भजन-साधनके लिये चेष्टा करनी चाहिये। जन्म-मरणकी वीमारीको छोटा नहीं समझना चाहिये।

[१२]

भजन-साधन और सत्सङ्ग कम होता है, इसका क्या कारण है ? इसका कारण भगवान्‌में प्रेम और विश्वासकी कमी ही समझी जा सकती है। निष्कामभावसे भजन-ध्यानका साधन तेज होनेपर संसारकी आसक्तिका नाश होकर सत्सङ्गमें प्रेम हो सकता है। और भगवान्‌को याद रखनेसे ही भगवान् याद रह सकते हैं। भगवान्‌के भजनका अभ्यास तीव्र होनेसे शरीरसहित सारा दृश्य संसार मिथ्या भासने लगता है और भगवान्‌के गुण-प्रभावादिकी वात वाँचने-सुननेसे प्रेमकी उत्पत्ति होकर भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। फिर शरीरकी सुधि नहीं रहती। मैंपनका भाव भी मिट जाता है। विना मैंपनके भावके शरीरसे चेष्टाएँ होती रहें, यही वहुत ऊँचे दरजेकी वात है। जवतक शरीरमें 'मैं' और 'मेरा' का भाव वना हुआ है, तभीतक उसमें आसक्ति है। भगवान्‌का भजन, ध्यान, सत्सङ्ग तथा माता-पिताकी सेवा करना ही

उत्तम पुरुषका कर्तव्य है। भगवान्‌का स्वरूप उनके नामके ही अधीन है। शरीरमें तकलीफ रहनेके समय भगवत्स्मरणमें अधिक भूल नहीं होनी चाहिये। बल्कि मृत्युकी यादसे संसार और शरीरमें नश्वर-बुद्धि होकर भगवान्‌का स्मरण अधिक होना चाहिये। यदि अधिक भगवत्स्मरण न हो तो भगवान्‌में प्रेमकी त्रुटि और शरीरमें आसक्ति समझनी चाहिये। यदि दूसरे जन्ममें भी भगवान्‌के चरणोंमें नित्य-निरन्तर प्रेम बना रहे, तो ध्यान होता रहे। परन्तु दूसरे जन्ममें इस जन्मके तीव्र अभ्याससे ही भगवान्‌में प्रेम हो सकता है, नहीं तो होना मुश्किल है। इसलिये सत्सङ्ग और भजन-साधनका तीव्र अभ्यास करके इसी जन्ममें ही भगवान्‌को पानेकी चेष्टा करनी चाहिये। बिना सत्सङ्ग किये भजन-ध्यानका साधन होना कठिन है और सत्सङ्ग भी भजन-ध्यान तथा भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त होता है। अतः यदि इस जन्ममें भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा हो तो सत्सङ्ग और भजन-ध्यानका साधन तेज करना चाहिये।

आप स्वयं विचार करके देखिये कि आप जैसा साधन कर रहे हैं, उससे भगवान् जल्दी मिल सकते हैं या नहीं। भजन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब सभी प्रकारकी वासनाओंका नाश हो जाता है और संसार तथा शरीरमें आसक्ति भी मिट जाती है। इससे माता-पिताके साथ भी उनकी मर्जीके मुताबिक आनन्दपूर्वक बर्ताव हो सकता है, जिससे उनकी सेवा होती है। अतः माता-पिताकी सेवाके लिये भी भजनकी बड़ी जरूरत है। रुपये, स्त्री तथा

शरीरमें प्रेम होनेके कारण भी माता-पिताकी सेवामें त्रुटि हो जाया करती है। भगवान्‌के भजन, ध्यान तथा सत्सङ्गके तेज साधनसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर संसार एवं शरीर सब क्षणभङ्गुर भासने लगते हैं और तब माता-पिताकी रुचिके अनुसार कार्य करनेपर दुःख नहीं होता। माता-पिताके मनके माफिक काम करना ही उनकी परम सेवा करना है। इस दृश्य शरीर और संसारकी सत्ताका अभाव हो जानेपर फिर दूसरोंकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेमें कोई आपत्ति नहीं रह जाती। चाहे जो कुछ हो, उसे तो आनन्द-ही-आनन्द रहता है। वस्तुतः जिनके मनमें इस दृश्य-संसार और शरीरके प्रति सत्ताका भाव नहीं है, वे ही जीवन्मुक्त हैं, उन्हींका जन्म धन्यवादके योग्य है। किसी भी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। चिन्ता ही भजन-ध्यानके साधनमें त्रुटि उत्पन्न करनेवाली है। जो निरन्तर प्रसन्न मनसे एवं निष्काम भावसे भगवान्‌के नामका जप करता है, उसको भजनके प्रतापसे जल्दी ही भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं। माता-पिता, दादा-दादी इत्यादि सभी बड़ोंकी सेवाके समान और कोई धर्म नहीं है। परन्तु इस धर्मका सुचारुरूपसे पालन सत्सङ्ग तथा भजन-ध्यानके द्वारा हृदयका पाप नाश हो जानेपर ही होता है; अन्यथा पापके कारण इस धर्मका पालन करनेमें शर्म आती है।

[१३]

आपने लिखा कि तीव्र अभ्यासके द्वारा बहुत जल्द श्रीपरमात्माके नित्य सत्य बोधस्वरूपके ध्यानमे सदा एकरस स्थिति हो जाय, ऐसा उपाय लिखना चाहिये, सो ठीक है। आपने अपना जो अभ्यास लिखा है, वह बहुत ठीक है। ऐसा अभ्यास बढ़ाते रहनेसे आपकी इच्छाके अनुसार स्थिति हो सकती है।

उपदेश देनेवाला मैं कौन हूँ ? फिर भी आपलोगोंके प्रेमके कारण कुछ शास्त्रकी बातें लिखी जाती हैं। परन्तु ध्यानका विषय जिस प्रकार समक्षमें समझाया जा सकता है, उस प्रकार पत्रमें नहीं समझाया जा सकता। फिर भी कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं—

(१) ध्यानके समय यदि कोई पुकारे और वह शब्द सुन पड़े तथा उत्तर देनेकी स्फुरणा हो तो कोई हर्जकी बात नहीं है। यदि शब्द सुनायी न पड़े और कोई स्फुरणा भी न हो तो और भी उत्तम बात है। ध्यानमें जो शब्द सुनायी देता है, वह सर्वव्यापी सत्-चित्-आनन्दके भीतर कल्पित-सा दिखायी देता है—यह भी कोई हर्जकी बात नहीं है। परन्तु उसमें जो अस्तित्व है, उसको परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये। उसके अतिरिक्त और किसीका अस्तित्व नहीं मानना चाहिये। यह स्थिति उत्तम है। परन्तु इससे भी ऊँची श्रेणीकी स्थिति और है, जो नीचे लिखी जाती है—

(२) पत्र लिखते समय जो अचिन्त्य अवस्थाका ज्ञान

रहता है, सो साधन-अवस्थामें रहता है। क्योंकि अचिन्त्य अवस्थामें भी जीवात्मा और परमात्माकी एकता नहीं है, एकताके समान स्थिति अवश्य है। एकता होनेके बाद तो फिर जीवात्माकी स्थिति शरीरमें हो ही नहीं सकती। वह तो पूर्ण ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। उस अवस्थाको कोई कह नहीं सकता, वह अनिर्वचनीय पद है।

(३) एकमात्र सच्चिदानन्द ही है, मैं कुछ भी नही हूँ—इस प्रकार अपनेको भूलकर सच्चिदानन्दका ही होना मानना चाहिये। मैं तथा मेरा कुछ नहीं है, ऐसा समझनेका अभ्यास करनेसे अपनेमे भिन्नताका अभाव और सच्चिदानन्दमें एकीभाव हो सकता है। फिर एकान्तमें आँख मूँदकर बैठनेके बाद अन्तःकरणमे संसारका जो चित्र चिन्तनमें आवे, उसे अन्तःकरणसहित मिथ्या समझे अर्थात् उसका अभाव समझे। सबका लोप हो जानेके बाद अन्तःकरणमें जो अभाव करनेवाली वृत्ति है, उसका अचिन्त्य परमात्मामें एकीभाव हो जाय, वही परमात्माके स्वरूपमें स्थिति है। सर्व आकारका अभाव करते-करते अभाव करनेवाली वृत्तिके भी शान्त हो जानेपर जो बच रहता है, वही अचिन्त्य, बोधस्वरूप आनन्दघन परमात्मा है। वही अमृत है।

(४) नित्य सत्य बोधस्वरूप आनन्दघनमें प्रगाढ़ स्थिति कब होगी, इसका उत्तर कोई मनुष्य नहीं दे सकता। क्योंकि यह बात भविष्यसे सम्बन्ध रखनेवाली होनेके कारण अनिश्चित है तथा साधनके अधीन है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि साधन तेज होनेपर उपर्युक्त

स्थिति शीघ्र ही प्राप्त हो सकती है। 'तीव्रसंवेगानामासन्नः।' (योग० १।२१)

(५) नित्य सत्य बोधस्वरूप आनन्दघनकी प्राप्ति चाहे जब हो, उसकी चिन्ता नही करनी चाहिये । उसका ध्यान निरन्तर अवश्य रहना चाहिये । इसके लिये तीव्र अभ्यास ही उपाय है।

(६) साधक पुरुषको व्यवहारके समय अचिन्त्यके स्मरणकी स्थितिका स्मरण रहता है । यह भी एक प्रकारका ध्यान है । यह अवस्था अच्छी है, परन्तु बहुत ऊँची नही है । इसके बाद एक अवस्था और होती है । उसमें नित्य आनन्दघनमे ध्यानकी निरन्तर प्रगाढ़ स्थिति हो जाती है । वह स्थिति सदा एकरस रहती है। उसमे कमी-बेशी नही होती । फिर उसके बाद उससे भी बढ़कर परमात्माकी प्राप्तिकी अवस्था होती है, परन्तु वह कहनेमे नहीं आ सकती।

इस प्रकार ध्यानका विषय बहुत गहन है । पत्रमे संक्षेपमे ही लिखा गया है। यदि कभी समक्ष मिलना हो तो अच्छी तरह पूछ लेना चाहिये ।

[१४]

आपने लिखा कि मन स्थिर नहीं रहता तथा भजन-सत्सङ्ग बहुत कम होता है सो ऐसा क्यों होता है ? सत्सङ्गकी उत्कण्ठा होनेसे ही सत्सङ्ग मिलता है । आपने सत्सङ्गका मर्म जाना नहीं । सत्सङ्गका मर्म जान लेनेपर

रहता है, सो साधन-अवस्थामें रहता है। क्योंकि अचिन्त्य अवस्थामें भी जीवात्मा और परमात्माकी एकता नहीं है, एकताके समान स्थिति अवश्य है। एकता होनेके बाद तो फिर जीवात्माकी स्थिति शरीरमें हो ही नहीं सकती। वह तो पूर्ण ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। उस अवस्थाको कोई कह नही सकता, वह अनिर्वचनीय पद है।

(३) एकमात्र सच्चिदानन्द ही है, मैं कुछ भी नही हूँ—इस प्रकार अपनेको भूलकर सच्चिदानन्दका ही होना मानना चाहिये। मै तथा मेरा कुछ नही है, ऐसा समझनेका अभ्यास करनेसे अपनेमे भिन्नताका अभाव और सच्चिदानन्दमें एकीभाव हो सकता है। फिर एकान्तमें ऑख मूँदकर बैठनेके बाद अन्तःकरणमे संसारका जो चित्र चिन्तनमें आवे, उसे अन्तःकरणसहित मिथ्या समझे अर्थात् उसका अभाव समझे। सबका लोप हो जानेके बाद अन्तःकरणमे जो अभाव करनेवाली वृत्ति है, उसका अचिन्त्य परमात्मामें एकीभाव हो जाय वही परमात्माके स्वरूपमें स्थिति है। सर्व आकारका अभाव करते-करते अभाव करनेवाली वृत्तिके भी शान्त हो जानेपर जो बच रहता है, वही अचिन्त्य, बोधस्वरूप आनन्दघन परमात्मा है। वही अमृत है।

(४) नित्य सत्य बोधस्वरूप आनन्दघनमें प्रगाढ़ स्थिति कब होगी, इसका उत्तर कोई मनुष्य नहीं दे सकता। क्योंकि यह बात भविष्यमें सम्बन्ध रखनेवाली होनेके कारण अनिश्चित है तथा साधनके अधीन है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि साधन तेज होनेपर उपर्युक्त

स्थिति शीघ्र ही प्राप्त हो सकती है। 'तीव्रसंवेगानामासन्नः।' (योग० १।२१)

(५) नित्य सत्य बोधस्वरूप आनन्दघनकी प्राप्ति चाहे जब हो, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उसका ध्यान निरन्तर अवश्य रहना चाहिये। इसके लिये तीव्र अभ्यास ही उपाय है।

(६) साधक पुरुषको व्यवहारके समय अचिन्त्यके स्मरणकी स्थितिका स्मरण रहता है। यह भी एक प्रकारका ध्यान है। यह अवस्था अच्छी है, परन्तु बहुत ऊँची नहीं है। इसके बाद एक अवस्था और होती है। उसमें नित्य आनन्दघनमें ध्यानकी निरन्तर प्रगाढ़ स्थिति हो जाती है। वह स्थिति सदा एकरस रहती है। उसमें कमी-बेशी नहीं होती। फिर उसके बाद उससे भी बढ़कर परमात्माकी प्राप्तिकी अवस्था होती है, परन्तु वह कहनेमें नहीं आ सकती।

इस प्रकार ध्यानका विषय बहुत गहन है। पत्रमें संक्षेपमें ही लिखा गया है। यदि कभी समक्ष मिलना हो तो अच्छी तरह पूछ लेना चाहिये।

[१४]

आपने लिखा कि मन स्थिर नहीं रहता तथा भजन-सत्सङ्ग बहुत कम होता है, सो ऐसा क्यों होता है? सत्सङ्गकी उत्कण्ठा होनेसे ही सत्सङ्ग मिलता है। आपने सत्सङ्गका मर्म जाना नहीं। सत्सङ्गका मर्म जान लेनेपर

सत्सङ्ग छूट नहीं सकता। संसारमें सत्सङ्गके समान कोई वस्तु नहीं है। जो सत्सङ्गकी इच्छा करते हैं, उन्हें सत्सङ्ग मिलता है। इच्छा न रहनेपर प्रारब्धवश ही सत्सङ्ग मिल सकता है, परन्तु प्रारब्धके भरोसे काम चलना मुश्किल है। इसलिये इच्छा करके उसे प्राप्त करना चाहिये।

आप तीर्थोंमें गये, परन्तु वहाँ जाकर भी आपका मन स्थिर नहीं हुआ तो फिर तीर्थोंमें जाकर आपने क्या लाभ उठाया ? तीर्थोंमें किसलिये जाया जाता है, इसपर विचार करना चाहिये। उत्तम पुरुष तो भगवत्-प्राप्तिके लिये तीर्थोंमें जाया करते हैं, मध्यम पुरुष धर्मके लिये जाया करते हैं। और उनसे भी नीची श्रेणीके लोग किसी कामनाकी पूर्तिके लिये जाते हैं। जो लोग भगवत्प्राप्तिके लिये तीर्थोंमें जाते हैं, उनकी दृष्टि भगवद्दर्शन प्राप्त करने, भगवद्भक्तोंद्वारा उपदेश सुनकर धारण करने और मन भगवान्में लगानेकी ओर रहती है। सो आपको भी ऐसा ही करना चाहिये। मन स्थिर करनेके लिये आपको भगवान्के नामका निरन्तर जप करना चाहिये। इससे आपका मन स्थिर हो सकता है।

[१५]

[श्रीजयदयालजीने मारवाड़ी अग्रवाल-समाजमें सगाई-विवाह आदिके अवसरपर आजकल जो फिजूलखर्ची और कुरीतियाँ बढ़ रही हैं, उसके सम्बन्धमें एक पत्रमें अपने विचार प्रकट किये हैं। यद्यपि ये विचार खास तौरपर मारवाड़ी अग्रवाल-समाजसे ही सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु फिजूल-

खर्ची और सामाजिक कुरीतियाँ तो प्राय. सभी समाजोंमें हैं। इसी भाँति अन्यान्य समाजोंके विचारशील समर्थ पुरुष भी अपने-अपने समाजोंमें फिजूलखर्ची और कुरीतियाँ रोकनेका प्रयत्न करें तो सबको लाभ हो सकता है। इसी अभिप्रायसे यह पत्र यहाँ प्रकाशित किया जाता है। —सम्पादक]

मारवाड़ी समाजकी सामाजिक फिजूलखर्ची और कुरीतियों-के सम्बन्धमें मेरे विचार ये हैं—

हमारे मारवाड़ी-समाजमें तो वाग्दान (सगाई), विवाह और गौना आदि अवसरोंपर फिजूलखर्च और कुरीतियाँ इतनी वढ़ी हुई है कि यदि उन्हें ठीक-ठीक लिखा जाय तो एक पूरी पुस्तक वन जाय। यहाँ संक्षेपमें कुछ वातोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

सगाईके समय पहले मुद्देके नेगका केवल १) दिया जाता था। आज उसकी जगह चोली, कब्जे और नगद मिलाकर बहुत साधारण गृहस्थके लगभग १००) खर्च हो जाते हैं, धनवानोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है।

सगाईके बाद कचोलेके नेगमें लड़कीवाले करीब ११) दिया करते थे। अब उसकी जगह चोली, कब्जे और नगद मिलाकर मामूली गृहस्थके भी १००) से अधिक खर्च हो जाते है। सगाईके बाद सगोंकी मिलनीके ४) देते थे, वे अभीतक ४) ही कायम हैं, किन्तु उसके साथ एक फिजूल कुप्रथा यह चल पड़ी है कि लड़केके हाथमें लोग रुपये या गिन्नियाँ (मोहरें) देने लगे है। स्त्रियोंकी मिलनीके भी ५०) ८०) देने लगे है। इस प्रकार सब मिलाकर लगभग १००) हो जाते हैं धनियोंका तो कोई ठिकाना

ही नहीं है। उसके बाद 'हराभरा'का नेग होता है। इसमें पहले लोग १०), २०) की सब्जी भेज दिया करते थे। समय पाकर २०), ३०) नगद भी भेजे जाने लगे, पर आजकल तो इसकी मात्रा यहाँतक बढ़ गयी है कि साधारण स्थितिवाले लोगोंको भी १००) की सब्जी और कम-से-कम २००) करीब नगद भेजने पड़ते हैं। धनवान्की तो कोई सीमा ही नहीं है। उसके बाद आँगी-मेवेका नेग होता है। कुछ समय पूर्व इस नेगमें दो पोशाक स्त्रियोंकी और दो पुरुषोंकी, कुछ मेवा, थोड़े खिलौने और लड्डू दिये जाते थे, किन्तु आजकल उनकी जगहपर साधारण स्थितिवालेको भी नगद और सामान मिलाकर ५००), ७००) या १०००) तक खर्च करने पड़ते हैं; धनियोंकी तो कोई अवधि ही नहीं है।

इसके बाद कन्याके लिये जब गहने और पोशाक आती है, उस समय पहले ११) या २१) दिया करते थे, उसकी जगह अब चोली, कब्जे और नगद मिलाकर १००) से अधिक तो साधारण स्थितिवालेके खर्च हो जाते हैं। यहाँतक तो सगाईके साथ सम्बन्ध रखनेवाले नेगोंकी बात हुई। अब विवाहके अवसरकी बात सुनिये। हमारे समाजमे आजकल प्रायः लड़कीवालेको अपने कुटुम्ब (३० से ४० मनुष्यों) को साथ लेकर लड़कीका विवाह करनेके लिये लड़केवालेके यहाँ जाना पड़ता है। धनी लोग तो १००, २०० आदमी साथ ले जाते हैं। उन लोगोंके जाने-आने और खाने-पीनेमें बहुत अधिक धन व्यय होता है। उन लोगोंके पहुँचनेके बाद वरपक्षकी ओरसे पुनः कचोलेका नेग होता है, जिसमें किसी समय १०), ५) दिये जाते थे, पर आज मामूली गृहस्थके भी कब्जे, चोली और नगद मिलाकर लगभग १००) खर्च हो जाते हैं। उसके बाद वरपक्षकी स्त्रियाँ

कन्यापक्षकी स्त्रियोंको चाव देने जाती हैं। चावके नेगमे पहले एक पोशाक (स्त्रियोकी) और ११) या १५) दिये जाते थे, पर आज उसके स्थानपर पोशाकके सिवा चोली, कब्जे, नगद आदि मिलाकर १५०) करीव खर्च हो जाते हैं धनियोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है। इसके वाद कुँआरीमिठाई (झोला भरना) होती है। इस नेगमे पहले तो वरको दो पोशाकें और कुछ मेवा-मिठाई दी जाती थी, पर अव इसमे मेवा-मिठाई, पोशाक, नगद आदि मिलाकर एक साधारण श्रेणीके गृहस्थके १५०), २००) करीव खर्च हो जाते हैं। इसके वाद हॉस (स्त्रियोका मिलन) का नेग होता है। इस काममे पहले २१) करीव दिये जाते थे, पर आज एक साधारण गृहस्थको १००), १२५) नगद स्त्रियोंको और वरके हाथमें एक गिन्नी देनी पड़ती है। इसके अनन्तर कोरथका नेग दिया जाता है, जिसमे १०१) अधिक-से-अधिक देनेकी पुरानी प्रथा अभीतक कायम है। इसके वाद दात (छाक) का नेग होता है, जिसमे किसी समय स्त्रियोकी ९ पोशाकें दी जाती थीं, आज पोशाक और नगद मिलाकर साधारण गृहस्थको भी ४५०), ५००) देने पड़ते हैं। इसके वाद सिरगुंथीके समय गॉठ-का नेग होता है, जिसमें पहले दो ऑगी और २) नगद दिये जाते थे, आजकल कब्जे, चोली और नगद मिलाकर करीव ५०) खर्च होते हैं धनवानोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है। इसके अनन्तर पहरावनीका नेग होता है उसमे पहले गहने, कपड़े, वरतन, नगद आदि साधारणरूपसे दिये जाते थे, पर आजकल उसके स्थानपर एक साधारण श्रेणीके गृहस्थके लगभग १५००), २०००) खर्च हो जाते हैं। इन सवके अतिरिक्त वारातके स्वागत-सत्कार और खिलाने-पिलाने आदिमे भी सैकड़ों-हजारो रुपये

व्यय करने पड़ते हैं। यहाँतक तो विवाहके सम्बन्धसे होनेवाले खर्चकी बात हुई; अब गौने (मुकलावे) का नम्बर आता है। पहले लड़कीके लिये कुछ गहने, कपड़े, खिलौने आदि सामान, उसकी सासके लिये कपड़े और २०), ३०), ५०) नगद दिये जाते थे; आज उसके स्थानपर हजारों रुपयोंके गहने, कपड़े और नगद दिये जाते हैं। यह खर्च विवाहकी पूरी रकमका लगभग आधा हो चला है। इसके बाद दूसरका दिया जाता है, जो गौनेका लगभग तिहाई होता है। इसके बाद लड़कीके गर्भवती होनेपर 'साध' नामक नेग दिया जाता है, इसमें पहले जहाँ लड़कीके लिये साधारण पोशाक भेजी जाती थी, वहाँ अब मामूली आदमीके भी कपड़ा नगद मिलाकर ७५), १००) खर्च हो जाते हैं। यदि लड़का पैदा होता है तो खीचड़ीका नेग और लड़की पैदा होती है तो तालवेका नेग होता है। खीचड़ीके नेगमें करीब १००) और तालवेमें ५०), ६०) खर्च होते थे, अब गहने, कपड़े, नगद मिलाकर एक साधारण आदमी भी खीचड़ीमें ३००) और तालवेमें १५०) खर्च करता है। फिर लड़की जब बालक साथ लेकर नैहरमें आती है तो उसे विदा करते समय पहले गहने, कपड़े मिलाकर करीब १५०) खर्च होते थे, अब एक साधारण श्रेणीका गृहस्थ भी ४००), ५००) खर्च करता है। इसे छूछकका नेग कहते हैं। इसके अनन्तर ससुरालमें जानेपर बच्चेका 'परोजन' नामक नेग होता है। इस काममें भी पहले १००), १५०) करीब खर्च होते थे, जिनके स्थानपर आज कन्याके पिताके ४००), ५००) खर्च हो जाते हैं धनियोंके यहाँ तो कोई ठिकाना ही नहीं है। यह हिसाब एक लड़कीकी सगाईसे लेकर उसके बच्चा पैदा होनेतकका है। बादका हिसाब कहाँतक बतलाया जाय!

जाकर सखियोंके साथ भगवान्‌के नौका-विहारका, फिर मखमली फर्शपर आनेका, सेवा-कुंजमें विराजनेका, युगल सरकारकी एकताका और फिर युगल सरकारका ध्यान-सेवन करता हूँ। तदनन्तर इष्टमन्त्रका जप करता हूँ। इसमें कोई त्रुटि हो तो बतलायें।

उ०—आपकी इस ध्यान-प्रणालीमे कोई त्रुटि नही मालूम होती। आप खूब प्रेमसे अपने इष्टदेवके ध्यान और जपको और भी बढ़ायें।

आपके प्रश्नोंके उत्तर संक्षेपमे ही देनेका प्रयास किया गया है। सुविधाके लिये आपके भावोंकी रक्षा करते हुए प्रश्नोंकी भाषा कुछ सुधार ली गयी है। आप उत्तरोको ठीक-ठीक हृदयङ्गम कर सकें, इसलिये प्रश्न भी साथ-साथ दे दिये गये है। आपके चौथे प्रश्नको द्वितीय प्रश्नमें ही अन्तर्भूत कर दिया गया है।

शेष भगवत्कृपा।

[२४]

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। समाचार जाने। आपकी शङ्काओंका समाधान प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार किया जाता है।

(१) जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बलिवैश्वदेव करते है और देवता, ऋषि, पितर आदिके लिये पाँच ग्रास निकालते और अग्निमें आहुति देते है, वैसे शूद्र भी कर सकते है। अन्तर केवल इतना ही है कि यज्ञोपवीतधारी द्विजातिको तो सब कर्म मन्त्रोच्चारणपूर्वक करने चाहिये, परन्तु शूद्र मन्त्रोंका

नहीं कर सकता। ऋषि-मुनियों और शास्त्रोंने उनके लिये यह विशेष सुविधा कर दी है कि द्विजातियोंको जो फल मन्त्रोच्चारण-पूर्वक कर्म करनेसे मिलता है, वही उन्हें बिना मन्त्रके भी मिल जाता है। मेरे पहलेके लेखोंमें भी संक्षेपसे इस बातका शायद संकेत होगा। यदि लेखोंमें यह बात न भी आयी हो तो समझ लेनी चाहिये।

(२) पितरोंके लिये श्राद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। यह आश्विनके कृष्णपक्षमें तो होता ही है, प्रत्येक महीनेकी मृत्यु-तिथिपर भी होता है। अपने पिता, पितामह आदिकी मृत्यु जिस पक्षकी जिस तिथिको अथवा जिस मासकी जिस तिथिको हुई हो उस दिन श्राद्ध कर सकते हैं। श्राद्धमें ब्राह्मणोंको ही भोजन करानेका नियम है। यदि श्राद्धके दिन ब्राह्मण-भोजन न करा सकें तो ब्राह्मण-भोजनका फल तो कैसे मिलेगा? पितरोंके उद्धारके लिये जप-पूजन आदि जो कुछ भी किया जाय, विधिपूर्वक होना चाहिये। सकाम कर्म विधिहीन होनेपर फलप्रद नहीं होते। जप तो यदि विधि-पूर्वक न हो सके तो चलते-फिरते, उठते-बैठते कर लेनेमें भी कोई हानि नहीं है। यदि पितरोंके लिये किसी ब्राह्मणसे महामन्त्रादिका जप करायें तो पहलेसे दक्षिणाकी संख्या नियत न करके अन्तमें श्रद्धानुसार दे दें। यदि ऐसा सम्भव न हो तो दक्षिणा नियत करके भी करा सकते हैं। इसका भी फल अवश्य मिलता है।

(३) इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रारब्धका फल अवश्य भोगना ही पड़ता है। ग्रहोंकी स्थितिसे उसकी कुछ सूचना मिल जाती है। उनका प्रभाव भी भगवान्‌के विधानके अनुसार ही पड़ता है। ग्रहोंकी शान्ति और जपसे यदि तीव्र प्रारब्ध न हुआ तो अरिष्टकी निवृत्ति भी हो सकती है, परन्तु यह नहीं कहा जा

सकता कि कब कौनसे ग्रह जप, शान्तिकर्म आदिसे शान्त हो जायँगे और कब नहीं होंगे। ज्ञानीको प्रारब्ध क्यों भोगना पड़ता है, यह एक दूसरा प्रश्न है। ज्ञानीके शरीरपर प्रारब्धका प्रभाव पड़ता है, परन्तु उससे ज्ञानीको सुख अथवा दुःखरूप विकार नहीं होता। जैसे साधारण पुरुष शरीरमें रोग होनेपर व्याकुल हो जाते हैं, वैसी व्याकुलता ज्ञानीमें नहीं होती। वह तो शरीर और समस्त दृश्यमान जगत्‌को प्रतीतिमात्र देखता है। उसके लिये प्रारब्ध और उसका फल प्रतीतिमात्र है। इसलिये वह न उन्हें चाहता है और न हटानेकी ही इच्छा करता है इसीसे उसके शरीरपर प्रारब्धका प्रभाव पड़ता है। अज्ञानी पुरुष प्रारब्धके फल सुखसे राग करता है और दुःखसे द्वेष। इसीसे वह दुःखको हटानेकी चेष्टा करता है। यदि प्रारब्ध शिथिल हुआ तब तो उसकी चेष्टा सफल हो जाती है, अन्यथा चेष्टा करनेपर भी प्रारब्धका फल भोगना ही पड़ता है। आशा है, इतनेसे आपकी शङ्काका समाधान हो जायगा।

(४) हम वर्णव्यवस्थाको जन्म और कर्म दोनोंसे मानते हैं। जो दोनों प्रकार ब्राह्मण है, वह श्रेष्ठ ब्राह्मण है। जो जन्मसे ब्राह्मण है, परन्तु कर्मसे क्षत्रिय—उसको क्षत्रिय-ब्राह्मण समझना चाहिये। जो कर्मसे वैश्य है, उसे वैश्य-ब्राह्मण। धर्मशास्त्रमें देव-ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-ब्राह्मण और राक्षस-ब्राह्मणतकका वर्णन है। अन्य वर्णमें उत्पन्न होकर अन्य वर्णका कर्म करनेसे कर्मसङ्कर हो जाता है। शुद्ध वर्ण तो वही है, जो जन्म और कर्म दोनोंसे ही शुद्ध है। आचरण ब्राह्मणके सदृश होनेपर भी जो जन्मसे ब्राह्मण नहीं है तो वह ब्राह्मण नहीं हो सकता।

यदि पहले कोई दबावके कारण क्षत्रियसे मुसलमान हो

गया हो और अब वह अपनेको क्षत्रिय मानकर क्षत्रियोचित कर्म करता है, तो किसीको कोई अधिकार नहीं कि वह उसे वैसा करनेसे रोके। उसकी मान्यतापर किसीका क्या अधिकार हो सकता है ? इतनी बात अवश्य है कि जो लोग उसे अपनी जाति-में सम्मिलित नहीं करते, उनका वैसा करना भी अनुचित नहीं है। क्या पता कि वह पुरुष अपनी मान्यतापर दृढ़ रहेगा या नहीं। ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं। जब लोग अपनेको हिंदू मानकर शुद्ध हुए—शादी, विवाह की, बच्चे पैदा किये और अन्तमें सबको लेकर फिर विधर्मी बन गये। इसलिये ऐसे लोगोंको जो जातिमें सम्मिलित नहीं करते, वे भी दोषी नहीं हैं। उनका वह काम भी एक प्रकारसे ठीक ही है।

(५) ऋतुकालमें चौथे दिन स्त्री-सहवासकी जो बात कही गयी है, वह स्त्रीकी अत्यन्त तीव्र इच्छा होनेपर है। वैसे छठे दिनका ही उत्तम समझना चाहिये। शास्त्रमें ऋतुकालके सोलह दिन गर्भाधानके योग्य बतलाये हैं। उनमें विषम रात्रियोंमें गर्भस्थिति होनेसे कन्या होती है और सम रात्रियोंमें होनेसे पुत्र। इस प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि सोलह रात्रियोंमेंसे अन्तिम रात्रियाँ ही श्रेष्ठ हैं। एकादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्य-ग्रहण आदिका भी निषेध है। इन सबका तात्पर्य यह है कि स्त्री-सहवास कम-से-कम और नियमितरूपमें ही होना चाहिये।

(६) इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान्‌से किसी भी बातकी कामना नहीं करनी चाहिये। बच्चा अपने माता-पितासे अपने अभावकी पूर्ति चाहता है अवश्य, परन्तु जो नहीं चाहता, उसके अभावपर माता-पिता अधिक ध्यान देते हैं। इसलिये सबसे श्रेष्ठ यही है कि भगवान्‌से कुछ भी माँगा न जाय।

भजनके लिये भी रोगनिवृत्तिकी प्रार्थना पहले नंबरकी बात नहीं है। उचित तो यह है कि भगवान्‌के विधानमें संतुष्ट रहकर रोग-शोककी अवस्थाओंमें भी उनकी कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। उन्होंने जब रोग दिया है, तब कुछ-न-कुछ सोच-समझकर ही तो दिया होगा। फिर उनके ज्ञान, कृपा और न्याय-शीलताको स्वीकार न करके उनकी देनको लौटाया क्यों जाय? परन्तु यदि ऐसी ऊँची मानसिक स्थिति न हो तो भजनके लिये आरोग्यकी प्रार्थना करना बुरा नहीं है।

(७) मुख्य बात तो यह है कि यदि राजा कोई अनुचित और अन्यायपूर्ण काम करनेको कहता है, तो उसे स्वीकार ही नहीं करना चाहिये। अपने स्वार्थके लिये किसी भी अन्यायपूर्ण कार्यको कर्तव्यके अंदर स्थान नहीं देना चाहिये। कोई नौकरी सर्वथा प्रारब्धाधीन नहीं होती। लाभ-हानि तथा सुख-दुःखकी प्राप्ति प्रारब्धके अनुसार होती है, और वह किसी-न-किसी निमित्तसे होती है। इसके लिये प्रारब्धको दोष न देकर उसपर और विश्वास करना चाहिये तथा जो कुछ लाभ-हानि, सुख-दुःख प्रारब्धमें बदा होगा वह तो मिलेगा ही, ऐसा निश्चय करके अनुचित कर्मसे अलग हो जाना चाहिये। 'यथा राजा तथा प्रजा' बननेकी नीति तो आत्मबलके अभावकी—कमजोरीकी बात है। इसको औचित्यका रूप कभी नहीं देना चाहिये।

(८) पति-पत्नीका एक शय्यापर शयन करना शास्त्रविरुद्ध नहीं है। यदि ऐसा करना शास्त्रविरुद्ध हो तो स्त्रीसहवास ही कैसे बन सकता है किन्तु संयमकी दृष्टिसे प्रतिदिन ऐसा नहीं करना चाहिये। कभी-कभी कुछ समयके लिये ऐसा करनेमें

कोई आपत्ति नहीं है। स्त्रीको अप्रसन्न नहीं करना चाहिये, परन्तु जहाँतक हो दृढताके साथ अधिक-से-अधिक संयमका पालन भी करना चाहिये।

(९) जो कर्मचारी राजाका काम ईमानदारीके साथ करता है, और प्रजाको भी प्रसन्न रखता है, वह अपना कर्तव्य-पालन तो करता है, परन्तु यदि वह प्रजासे किसी प्रकारका इनाम लेता है, तो उसे खुले-चौड़ेमें सबके सामने लेना चाहिये। किसीसे भी छिपाकर लेना घूसखोरी ही है। इसे नेक कमाई नहीं कहा जा सकता।

(१०) चित्त-निरोधके लिये जिस सुषुम्ना नाड़ीका वर्णन किया गया है, वह वैद्योंकी जानकारीमें आनेवाली सुषुम्ना नाड़ीसे सम्बन्ध तो अवश्य रखती है, परन्तु है उससे भिन्न। वह हृदयसे लेकर मस्तकपर्यन्त एक ज्योतिर्मय सूत्रके रूपमें है और उसमें परमात्माका ध्यान करनेसे बड़े आनन्दका अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त एक सुषुम्ना-स्वर भी है। जब इड़ा और पिंगला बायें और दायें दोनों नासिका-छिद्रोंसे समानरूपसे श्वास-प्रश्वास चलने लगता है, तब उसे सुषुम्ना-स्वर कहते हैं। ब्राह्म-मुहूर्त और सन्ध्याके समय कभी ऐसा स्वाभाविक ही हो जाता है। यह स्वर चलनेपर ध्यानमें चित्त बहुत जल्दी लगता है।

आपके प्रश्न स्वाभाविक और कामके हैं। इसमें कोई अपराधकी बात नहीं है। उत्तर आपके प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार अलग-अलग दिये गये हैं। उत्तरके लिये टिकट भेजनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

[२५]

प्रेमसहित राम-राम। आपका साधन किस तरह चलता है? काम, क्रोध, लोभ, मोहका वेग कम होकर श्रीपरमात्मादेवमे जल्दी अनन्य प्रेम होना चाहिये। आपको हर समय विचारते रहना चाहिये कि जल्दी कल्याण किस तरह हो। यदि ऐसा मौका भी विना भगवत्प्राप्तिके चला जायगा तो फिर ऐसी तजवीज वैठनी वहुत मुश्किल है। आपने अपने उद्धारकी चेष्टाके लिये आफिसका काम छोड़ा था, किन्तु अभीतक आपका ऐसा तेज साधन नहीं हुआ, जिसके वलसे आपको जल्दी भगवत्प्राप्ति हो जाय। आपका साधन ढीला तो होना ही नहीं चाहिये, वल्कि दिन-पर-दिन अधिक तेज होना चाहिये। आपको किस वातकी जरूरत है? आपका साधन तेज होनेमे किसलिये रुकावट हो रही है? भगवत्प्राप्तिके लिये आपकी उत्कण्ठा जोरसे क्यों नहीं होती? यदि इसी अवस्थामे प्राण चले जायँ तो कितनी हानि है? प्राण चले जानेके वाद आपका क्या उपाय रह जायगा? आपको इन वातोंपर विचार करना चाहिये और वहुत जल्दी कल्याणका उपाय कर लेना चाहिये। अभी नहीं करेंगे तो फिर कव करेंगे? दिन तो वीते जा रहे हैं। गये हुए दिन वापस नहीं आ सकते।

[२६]

प्रेमसहित राम-राम वंचना। आपने लिखा कि आपकी मायाको आप ही जानें, सो इस तरह नहीं लिखना चाहिये।

आपने पूछा कि श्रीसच्चिदानन्दघन भगवान्‌का ध्यान करते हुए श्रीसच्चिदानन्दमय ही हो जायँ, शरीर तथा संसारका कुछ भी ज्ञान न रहे—ऐसा ध्यान कब होगा, सो ठीक है। जब श्रीपरमात्मादेवके नामका जप करते-करते रोमाञ्च और अश्रुपात होने लग जायँगे, भगवान्‌में पूर्ण प्रेम हो जायगा, उस दिन आपके लिखे मुताबिक श्रीपरमात्मादेवका ध्यान होना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। इस प्रकारके ध्यान रहनेका उपाय पूछा सो सत्सङ्ग और भजनकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये तथा शास्त्रोंका विचार भी करना चाहिये। हो सके तो श्रीगीताजी भाव और अर्थसहित कण्ठस्थ कर लेनी चाहिये। और काम करते समय भी भगवान्‌के प्रेममें मग्न होते हुए उनके नामका जप और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही काम करनेका अभ्यास डालना चाहिये। इस भाँति अभ्यास तेज होनेपर ध्यान अटल हो सकता है। फिर श्रीसच्चिदानन्दका ध्यान कभी भी छूट सकता नहीं। जबतक ध्यान अच्छी तरह नहीं होता है, तभीतक ध्यानका साधन कुछ कठिन मालूम देता है।

आपने लिखा कि बहुत बार ध्यानकी बातें सुनी जाती हैं, किन्तु बड़े पश्चात्तापकी बात है कि अभीतक ऐसा ध्यान हुआ नहीं, सो ठीक है। अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास करनेसे हो सकता है। ध्यानकी बातें सुननेके समय एकाग्रचित्त होकर सुनना चाहिये और उसके बाद ध्यानमें मग्न रहते हुए ही मार्गपर चलना चाहिये। चाहे जो कुछ हो, ध्यान नहीं छूटना चाहिये। इस तरहकी स्थिति नित्य अभ्यास करनेसे हो सकती है।

किसी समय थोड़ी चेष्टासे भी ध्यान हो जाता है और

किसी समय अधिक चेष्टा करनेपर भी नहीं होता, सो ठीक ही है। जब वृत्तियाँ सात्त्विक होती हैं तब तो थोड़ी चेष्टासे भी ध्यान हो जाता है, किन्तु जब राजसी होती हैं तब अधिक चेष्टा करनी पड़ती है, और जब तामसी वृत्तियाँ होती हैं उस समय तो भगवान्का ध्यान होना ही मुश्किल है। इसलिये वृत्तियोंको निरन्तर सात्त्विक रखनेके लिये यज्ञ, दान, तप आदि सात्त्विक कर्म तथा पूजा-पाठ, भजन-सत्सङ्ग आदि करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उत्तम कामसे वृत्तियाँ शीघ्र ही सात्त्विक हो सकती हैं। इसके सिवा इसका और कोई उपाय है नहीं।

जपकी चेष्टा होती लिखी, सो ठीक है। किसी समय आनन्दमयका ध्यान बहुत उत्तम होता है, सो वह भजन-सत्सङ्गका ही प्रताप है। आपने लिखा कि मेरे आचरण बहुत खराब हैं किन्तु भगवान् पतितपावन हैं, इसीसे धीरज है, सो आनन्दकी बात है। पत्रमें मेरी बड़ाई नहीं लिखनी चाहिये, आपको इसके लिये पहले भी मनाही की थी।

[२७]

××× तुम्हारे अब ऐसा क्या काम है, जिसके कारण तुम भगवत्प्राप्तिके लिये कटिबद्ध होकर नहीं लगते हो? भाई! यदि इस समय शरीर छूट जाय तो तुम विचार करो। तुम्हारे ऐसा कौन-सा साधन बन गया है, जिसके कारण तुम्हारी चेष्टा ढीली है। तुम किसके भरोसे निश्चिन्त-से हो रहे हो? यदि कहो कि भरोसा तो श्रीपरमात्मादेवका ही है सो भाई! यह तुम्हारी समझकी भूल है। तुमने श्रीपरमात्मादेवकी बातें

तो कुछ भी सुनी नहीं, तब फिर यह कहनेमात्रके भरोसेसे कैसे काम चल सकता है? तुमको विचार करना चाहिये। भाई! तुमने मनुष्यका शरीर लेकर क्या किया? संसारमें लोग कहते हैं, ये इनके मित्र हैं, पर भाई हमारा मित्रपना भगवान्के भजनमें बाधा देनेवाला थोड़े ही है! तुम हमारे मित्र हो तो फिर मित्रकी बात तो माननी चाहिये। तुम्हें कई बार लिख दिया कि श्रीगीताजी पढ़नी चाहिये। भाई! यदि रोज दो श्लोक अर्थसहित कण्ठस्थ कर लिये जायँ और इस प्रकार बारह महीनेमें पूरी गीता अर्थसहित कण्ठस्थ करनेका नियम कर लिया जाय तो क्या तुम गीताजी याद नहीं कर सकते हो? परन्तु हो कैसे, इस तुच्छ हृदयकी दुर्बलताको छोड़ो तब न! भाई! तुममें इतनी कायरता कहाँसे आयी? तुम्हें यह कायरता शोभा नहीं देती। तुमने किसलिये इतनी कमजोरी धारण कर ली है? साधनके लिये तुम्हें अपने मनमें उत्तेजना क्यों नहीं होती है? तथा सत्सङ्गमें पहलेसे अधिक प्रेम होना चाहिये, सो क्यों नहीं होता? सत्सङ्गका प्रभाव फिर कब जानोगे? समय तो बीता जा रहा है। जल्दी चेतना चाहिये।

[२८]

की बातें सुननेसे उनकी बहुत ऊँची कोटि अनुमान की जाती है। किन्तु से भी आपका साधन तेज समझा जाता है परन्तु अब ढीला नहीं होना चाहिये। बहुत समय हो गया। समय तो बीतता ही जा रहा है। गया हुआ समय फिर आता नहीं। इसलिये अब तो कटिबद्ध होकर ऊँचे-

से-ऊँचे साधनके परायण हो जाना चाहिये, एक पलक भी नीचे साधनमें नहीं विताना चाहिये । ·· के अनुसार साधन होना चाहिये । सम्पूर्ण वल साधनपर लगा देना चाहिये । ध्यानमें ऐसा मस्त हो जाना चाहिये कि भले ही कोई शरीरका नाश कर दे, पर कुछ भी मालूम न हो । श्रीसच्चिदानन्दघनके स्वरूपमें ऐसी मग्नता होनी चाहिये कि फिर इस शरीरकी कुछ भी सुध-बुध न रहे । सारे संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर और अनित्य समझकर उस नित्य वोधस्वरूप परमानन्दमें मग्न हो रहना चाहिये

[२९]

आप किसलिये कटिवद्ध होकर साधनमें नहीं लग रहे हैं ? इस शरीरसे उत्तम लाभ न लेकर मिथ्या सांसारिक भोगोंके तुच्छ आनन्दमें किसलिये अपने अमूल्य जन्मको धूलमें मिला रहे हैं ? आपका शरीर भी आपके साथ नहीं जायगा, फिर और चीजें तो जा ही कैसे सकती हैं ? उसके वाद आपके ये रुपये किस काम आवेंगे ? एक भगवान्‌के सिवा आपकी और कोई भी सहायता करेगा नहीं । यदि आप तुच्छ सांसारिक आराममें फँसकर अपने पारलौकिक आनन्दको धूलमें मिला देंगे तो पीछे वहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा । अव आपको चेतकर चलना चाहिये । ऐसा समय पुनः मिलना वहुत ही कठिन है । आप उस परम आनन्दके मर्मको नहीं जानते नहीं तो इस शरीरके तुच्छ भोगोंमें कभी नहीं रमते ।

[३०]

संसार और शरीरको नाशवान् देखनेसे भगवान् बुखारमें अधिक याद रह सकते हैं। भगवान्‌के साथ प्रेम हुए बिना बहुत ही दुर्गति हुआ करती है—इस तरह समझकर भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। नहीं तो बहुत ही मुश्किल है। शरीर बीत जायगा तब वह तुम्हारे किस काम आवेगा। शरीर तो जरूर नाश होगा ही। इसको बचा रखनेका कोई उपाय नहीं है। इसलिये जबतक यह मिट्टीमें नहीं मिल जाता, तबतक इससे जो कुछ लाभ लेना हो सो तुरंत ले लेना चाहिये। इस प्रकार विचार करनेसे भजन अधिक हो सकता है। जो कुछ लाभ इस शरीरसे उठाना हो, वह प्राण निकले उससे पहले ही उठा लेना चाहिये। यह शरीर तो मिट्टी ही है, अतः तुरंत मिट्टीमें मिलनेवाला है। जल्दी चेष्टा कर लेंगे तो काम बन जायगा, नहीं तो मुश्किल ही है।

[३१]

आपने इतना समय बिता दिया! लगभग पूरी आयु ही बीत गयी। आपको मनुष्य-शरीर पाकर कुछ विचार करना चाहिये था। पर जो हुआ सो हुआ अब भी चेतना चाहिये। आप जिस कामके लिये आये थे, उस काममें आपको तत्पर होना चाहिये। अब भी यदि नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे? एक भगवान्‌के सिवा कोई भी आपका नहीं है। शरीर भी आपका नहीं है। संसारमें मनुष्य-शरीर पाकर भी यदि भगवद्दर्शन हुए बिना चले जायँगे तो बहुत ही

पश्चात्ताप करना होगा और फिर पश्चात्ताप करनेसे कुछ भी गरज सरेगी नहीं । अतः अब तो इस शरीरको एकदम ही भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये । अब तो इस शरीरसे परम लाभ उठाना चाहिये । मनुष्य-जन्मका फल पाना चाहिये । आप किसलिये नहीं ,चेतते हैं ? एक पलक भी दूसरे काममें क्यों बिताते हैं ? किसलिये फालतू बातोंमें समय बिताते हैं ? श्री-भगवान्‌के भजन, ध्यान, सत्सङ्गके सिवा जो कुछ भी बात की जाती है, वही फालतू बात है और भगवान्‌की प्राप्तिके सिवा जो कुछ भी समय विताया जाता है, वही फालतू समय है । फालतू समय विताया हुआ आपके किस काम आवेगा ?—ऐसा विचार कर अब तो बहुत ही जल्दी चेतना चाहिये ।

---

[३२]

प्रेमकी बात की चिट्ठीमें लिखी है, उसे देख सकते हैं । और आपको विचारना चाहिये ! मैं कौन हूँ ? किसलिये यहाँ आया हूँ ? मुझे क्या करना चाहिये ? और मैं क्या कर रहा हूँ ? आपका इस तरह पेट भरनेके लिये ही यहाँ नहीं आना हुआ है । आपने मनुष्य-जन्म पाकर क्या किया ? जब मृत्यु आकर प्राप्त होगी, उस समय आप क्या करेंगे ? उस समय आपके रुपया, स्त्री, पुत्र तथा कुटुम्बी लोग क्या काम आवेंगे ? शरीर भी तो आपके साथ नहीं जायगा ! उस समय कोई भी सहायता नहीं दे सकेगा । कोई भी काम नहीं आवेगा । केवल भगवान्‌का भजन किया हुआ होगा तो वही काम आवेगा, शेष तो सब जवाब दे देंगे । क्योंकि और किसीकी वहाँ चलती

भी नहीं है। फिर आप धोखेमें पड़कर किसलिये इस प्रकार सांसारिक पदार्थोंके लिये रात-दिन मारे-मारे फिर रहे हैं? रुपये एकत्र करनेमें इतनी उम्र तो बिता दी है, फिर भी बिता रहे हैं? आप कुछ विचार नही कर रहे हैं कि ये रुपये मेरी क्या सहायता करेंगे? क्या आपके पास कोई अमरपट्टा है? क्या मृत्यु और यमराजके साथ आपकी दोस्ती है? क्या इन सब चीजोंको किसी भी प्रकार अपने साथ ले जानेका कोई उपाय है? यदि नही तो फिर इस नाशवान् अनित्य संसारके पदार्थोंसे प्रेम हटाकर एकमात्र सच्चे निष्काम प्रेमी प्यारे मनमोहनसे ही निष्कामभावसे अनन्य प्रेम क्यों नही कर लेना चाहिये? फिर कब चेतेंगे? जल्दी चेतना चाहिये। बहुत-सा समय चला गया। ढील किसलिये कर रहे हैं? किसके भरोसे निश्चिन्तकी-ज्यों हो रहे है?

---

[३३]

मुझसे मिलनेकी टान लिखी सो यह तो आपके प्रेमकी बात है। और आजकल भजन कम होता लिखा तथा सांसारिक कामोंमें फँसाव लिखा सो सत्सङ्ग कम हुआ होगा। आपने लिखा कि पीछे पछताते भी है, सो इस तरहके पछतानेसे पूरा काम नही बनेगा। असली पछताना तो उसीका समझा जाता है, जिसको उस कामके लिये फिर दुबारा नही पछताना पड़ता। एक कामके लिये अनेक बार पछताये, फिर भी काम न हो और बार-बार पछताना पड़े, तो उसका क्या मूल्य है? परन्तु इस तरहका सुन्दर मौका लग जानेपर भी यदि भगवान्‌के

भजन-ध्यानमें जोरसे न लगकर इसी प्रकार ही संसारमें भटकते रहे तो जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा। इसलिये सारी बात विचारकर ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे आगे पछताना न पड़े। अगर साधन तेज करके जिस कामके लिये आना हुआ है, उसे सिद्ध कर लेंगे तो फिर कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा।

आपने लिखा कि आजकल संसारका चिन्तन ही अधिक होता है, भजन नहीं बनता, अतः मन भगवान्में कैसे लगे, सो प्रेम होनेसे मन भगवान्में लगता है। प्रेमकी बातें श्री के पत्रमें लिखी हैं, उन्हें ध्यानमें लाना चाहिये।

××× यदि इस तरहका प्रेम भगवान्में हो जाय तो भगवान्के आनेमें बिल्कुल सन्देह नहीं। क्योंकि श्रीपरमात्मादेव स्वयं सर्वसामर्थ्यवान् और स्वतन्त्र हैं। इसलिये उनके साथ पूर्ण प्रेम करना चाहिये। ××× भगवान्में निष्कामभावसे पूर्ण प्रेम करनेके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। उनके साथ प्रेम होनेके बाद आपको कुछ भी नहीं करना होगा। फिर आपको किसीकी भी गरज नहीं रहेगी। लोग ही आपकी गरज करेंगे। किन्तु उनके साथ प्रेम नहीं हुआ तो कुछ भी नहीं हुआ।

[३४]

××× पहले मैंने आपको सत्सङ्गके समाचार लिखे थे उनके अनुसार आप साधन करते हैं या नहीं? सो लिखना चाहिये। संसारको असार समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। संसारकी असारता समझनेके बाद भगवान्के मिलनेमें इस

तरहकी ढील नहीं हो सकती, इसलिये समयको अनमोल समझना चाहिये। जिस समय आप समयकी अमूल्यता समझ लेंगे, उस समय आपको भगवान्‌के सिवा संसारकी अन्य कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगेगी तथा संसारके ये क्षणभङ्गुर भोग प्रत्यक्ष नाशवान् प्रतीत होने लगेंगे एवं सर्वत्र एक श्रीपरमात्मा-देव ही दीखने लग जायँगे। किन्तु समयको अमूल्य समझे बिना कुछ भी नहीं होगा। समयको अनमोल जान लेनेके बाद एक पलक भी व्यर्थ काममें नहीं बितायी जा सकती। जबतक संसारके तुच्छ भोगोंके लिये समय बिताया जाता है, तबतक समयका कुछ भी प्रभाव नहीं जाना। आपको विचारना चाहिये कि हम कौन हैं, किसलिये यह मनुष्य-शरीर हमें मिला है, हमें क्या करना चाहिये और क्या कर रहे हैं।

---

[३५]

आपने लिखा कि मेरा प्रेम बहुत कम हो गया, सो प्रेम तो कभी कम हो नहीं सकता। यदि देखनेमें कम नजर आये तो भी वास्तवमें कम नहीं समझना चाहिये। निष्काम कर्म, उपासना और प्रेमका क्षय हो नहीं सकता। प्रेमका उपाय के पत्रमें लिखा गया है। पहले भी आपका प्रेम अधिक नहीं था, आपने भूलसे अधिक मान लिया था। वास्तविक प्रेम ते[illegible] होता ही नहीं। सकाम प्रेम रहा होगा। प्रेम तो [illegible] चीज है। असली प्रेमका विषय तो आप जानते [illegible] आदमियोंके साथ प्रेम होनेसे ही प्रेमका मर्म [illegible]। श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजके स[illegible]

अर्थात् 'यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही परम आलम्बन है। इस आलम्बनको जानकर पुरुष ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है।'

आपने लिखा कि 'जिस देहसे प्राणीमात्रकी सेवा नहीं होती, वह मृतकके समान है, भगवान् उसीके प्रिय हैं, जो उनकी रची हुई प्रजामें उन्हींका स्वरूप लखकर उससे प्रेम करते हैं और उसके दुःखमें दुखी होते हैं।' सो ऐसा ही करना चाहिये। आपने लिखा कि 'आप मुझे आपत्तिके समय आश्वासन दें तथा इसका उत्तर सान्त्वनाभरे शब्दोंमें दें, जिससे मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो।' सो आश्वासन और सान्त्वना देनेवाले तो भगवान् ही हैं। मैं तो साधारण आदमी हूँ। फिर भी आप यदि मेरे पत्रसे सन्तोष मानें तो यह आपके प्रेमकी बात है।

आपने लिखा कि 'धन तो चञ्चल बिजलीके समान है, इससे जो कुछ यश और धर्म कमाया जा सके, यही अच्छा है' सो बहुत ठीक है। यशसे भी धर्म कमाना उत्तम है।

---

[१८]

आपने पूछा, अपनी दिनचर्या किस प्रकार बनानी चाहिये, क्या-क्या नित्यकर्म करना, काम किस समय करना, कामके समय भाव कैसा रखना तथा कौन-सी पुस्तक किस समय पढ़नी चाहिये ? अतएव सबेरे जागनेसे लेकर रातको सोनेतकका समय-विभाग करके यहाँ लिखा जा रहा है। आप अपने सुभीते-के अनुसार समयको कम-ज्यादा चाहे जैसे कर सकते हैं।

प्रातःकाल ४ बजे—उठना।

तरहकी ढील नहीं हो सकती, इसलिये समयको अनमोल समझना चाहिये। जिस समय आप समयकी अमूल्यता समझ लेंगे, उस समय आपको भगवान्‌के सिवा संसारकी अन्य कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगेगी तथा संसारके ये क्षणभङ्गुर भोग प्रत्यक्ष नाशवान् प्रतीत होने लगेंगे एवं सर्वत्र एक श्रीपरमात्मा-देव ही दीखने लग जायँगे। किन्तु समयको अमूल्य समझे विना कुछ भी नहीं होगा। समयको अनमोल जान लेनेके बाद एक पलक भी व्यर्थ काममें नहीं वितायी जा सकती। जबतक संसारके तुच्छ भोगोंके लिये समय विताया जाता है, तबतक समयका कुछ भी प्रभाव नहीं जाना। आपको विचारना चाहिये कि हम कौन हैं, किसलिये यह मनुष्य-शरीर हमें मिला है, हमें क्या करना चाहिये और क्या कर रहे हैं।

---

[३५]

आपने लिखा कि मेरा प्रेम बहुत कम हो गया, सो प्रेम तो कभी कम हो नहीं सकता। यदि देखनेमें कम नजर आये तो भी वास्तवमें कम नहीं समझना चाहिये। निष्काम कर्म, उपासना और प्रेमका क्षय हो नहीं सकता। प्रेमका उपाय के पत्रमें लिखा गया है। पहले भी आपका प्रेम अधिक नहीं था, आपने भूलसे अधिक मान लिया था। वास्तविक प्रेम तो कभी कम होता ही नहीं। सकाम प्रेम रहा होगा। प्रेम तो कुछ और ही चीज है। असली प्रेमका विषय तो आप जानते भी नहीं। प्रेमी आदमियोंके साथ प्रेम होनेसे ही प्रेमका मर्म जाना जाता है। श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजके साथ गोपियोंका सच्चा प्रेम था तथा

अर्थात् 'यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही परम आलम्बन है। इस आलम्बनको जानकर पुरुष ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है।'

आपने लिखा कि 'जिस देहसे प्राणीमात्रकी सेवा नही होती, वह मृतकके समान है, भगवान् उसीके प्रिय हैं, जो उनकी रची हुई प्रजामें उन्हीका स्वरूप लखकर उससे प्रेम करते है और उसके दुःखमें दुखी होते हैं।' सो ऐसा ही करना चाहिये। आपने लिखा कि 'आप मुझे आपत्तिके समय आश्वासन दें तथा इसका उत्तर सान्त्वनाभरे शब्दोंमें दें, जिससे मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो।' सो आश्वासन और सान्त्वना देनेवाले तो भगवान् ही हैं। मैं तो साधारण आदमी हूँ। फिर भी आप यदि मेरे पत्रसे सन्तोष मानें तो यह आपके प्रेमकी बात है।

आपने लिखा कि 'धन तो चञ्चल बिजलीके समान है, इससे जो कुछ यश और धर्म कमाया जा सके, यही अच्छा है' सो बहुत ठीक है। यशसे भी धर्म कमाना उत्तम है।

[१८]

आपने पूछा, अपनी दिनचर्या किस प्रकार बनानी चाहिये, क्या-क्या नित्यकर्म करना, काम किस समय करना, कामके समय भाव कैसा रखना तथा कौन-सी पुस्तक किस समय पढ़नी चाहिये ? अतएव सवेरे जागनेसे लेकर रातको सोनेतकका समय-विभाग करके यहाँ लिखा जा रहा है। आप अपने सुभीते-के अनुसार समयकी कम-ज्यादा चाहे जैसे कर सकते हैं।

प्रातःकाल ४ बजे—जगना।

४ बजेसे ४॥—शौच-स्नान आदि ।

४॥ से ६—सन्ध्या तथा गायत्री-जप अर्थात् सन्ध्या करनेके बाद शेष एक घंटेमें गायत्रीकी सात माला जपना ।

६ से ६॥—गीताजीका पाठ और विवेचनपूर्वक मनन करना ।

६॥ से ७॥—मानसिक पूजा और नाम-जपसहित ध्यान करना । ध्यानके समय यदि विक्षेप—आलस्य आवे तो ध्यानकी वृत्तियाँ बनानेके लिये भगवान्से स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये अथवा गीतातत्त्वाङ्कमें प्रकाशित प्रेम, वैराग्य और ध्यानविषयक बातें पढ़नी चाहिये ।

७॥ से ८—स्वास्थ्यके लिये व्यायाम करना तथा घूमना ।

८ से १०—भगवान्के नामका जप तथा उनके स्वरूपका ध्यान करते हुए ही कामको भगवान्का काम समझकर भगवान्की प्रसन्नताके लिये भगवान् ही हमारे साथ रहकर काम करवा रहे हैं—इस भावसे काम करना चाहिये ।

१० से ११—भोजन करके बड़े उत्साह और प्रेमसे चित्तवृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेके लिये भागवत, रामायण आदिका विवेक और वैराग्ययुक्त बुद्धिसे विचार करना चाहिये, केवल पाठमात्र ही नहीं ।

११ से ४—पूर्वमें ८ से १० तकके लिये बताये हुए भावके अनुसार ही काम करना ।

४ से ४॥—शौच-स्नान आदि ।

४॥ से ५॥—सन्ध्या करके गायत्रीका तीन माला जप इस समय कर लेना चाहिये ।

५॥ से ७—श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नाम-जप करते हुए भगवान्‌के स्वरूपका गुण, प्रभाव, लीलासहित ध्यान करना चाहिये। ध्यानके समय यदि विक्षेप—आलस्य आवें तो इनके नाशके लिये वैराग्य, भक्ति, ज्ञान, ध्यान और प्रेमसम्बन्धी पुस्तकें पढ़नी चाहिये।

७ से ७॥—भोजन, विश्राम।

७॥ से ८॥—साधना-कमेटीमें जाकर गीताका अभ्यास करना।

८॥ से १०—सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना और संस्थाके कार्यकी आवश्यकता हो तो प्रात' ८ से १० तकके लिये बताये हुए भावके अनुसार ही संस्थाका काम करना चाहिये।

१० से ४—भगवान्‌के नामका जप तथा चरित्र और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही सोना।

आपने लिखा कि कभी प्रार्थनामय ही बननेकी मनमें आती है, तो कभी गीता ही पढ़नेकी और कभी नाम-जपपरायण ही होनेकी मनमें आती है, तो कभी सद्ग्रन्थोंको पढ़नेकी ही प्रधानता करनेकी आती है, सो ठीक है। भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान तो हर समय—आठों पहर ही रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। सोनेके समय नाम-जप और ध्यान करते हुए ही सोना चाहिये तथा सोते हुए भी स्वप्नमें नाम-जप और ध्यान ही करते रहना चाहिये। रही गीता और सद्ग्रन्थोंके पढ़नेकी तथा प्रार्थना करनेकी बात, सो समय-समयपर ऐसा करनेके लिये ऊपर लिखा ही है।

आपने लिखा कि कमेटीमें जानेसे कभी-कभी तो उलटा निरुत्साह ही होता है, सो ठीक है, कमेटीमें न जायँ तो कोई हर्ज नहीं।

आपने लिखा कि और भी बहुत-सी बातोंको लेकर खटपट बनी ही रहती है। आपसे पूछनेकी मनमें आती है, किन्तु फिर यह मनमें आ जाता है कि 'भजन-ध्यानसे यह सब मिट जायगी' सो ठीक है, परन्तु हमसे पूछनेमें आपको कोई संकोच नहीं करना चाहिये।

आपने लिखा कि 'काम करते समय नाम-जप खूब अच्छी तरह हो सकता है—यह तो खूब विश्वास है।' सो ठीक है, यदि काम करते समय जप, ध्यान और प्रसन्नता, शान्ति रहे तो फिर काममें अधिक समय लगाया जाय तो भी कोई हर्ज नहीं, क्योंकि ऐसा काम भी उत्तम साधन है (गीता ८ । ७, १८ । ५७)।

आपने लिखा कि कभी मनमें आता है कि दू
चाहिये और कभी मनमें आता है कि अपने शरीर
इतना अधिक खर्च नहीं करना चाहिये सो
हजम हो तो दोनों समय दूध पीना चाहि
पदार्थ है। इसके सेवनसे वृत्तियाँ सा
मेरा अपना अनुभव है। दूधके
समझना चाहिये। वह तो सादे

व्यायामके बारेमें लिखा सो
पूर्वक करना चाहिये। शीर्षासन
करना चाहिये।

आपने अपने मनके
लिये लिखा सो ठीक है, आपके
यानें नहीं लिखी हैं। आपकी
परिस्थिति तथा सुविधाको लक्ष्यमें
लिखी गयी हैं।

व्यर्थकी बातोंमें बहुत समय चला जाता लिखा सो व्यर्थ बातें तो न सुननी और न करनी ही चाहिये । इस विषयमें जितना संयम करें, उतना ही अच्छा है, और आपमें तो प्रायः संयम ही देखा जाता है। यदि योग्यतासे उचित मात्रामें बोलनेका काम पड़े तो उसके लिये ग्लानि नही करनी चाहिये । बात करते समय बात करनेवालेके स्थानमें या उसके अंदर भगवान्‌को देखना चाहिये, फिर बात भी साधन हो सकता है ।

[१९]

सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । आपने पहले भी पत्र लिखा था, परन्तु मेरा उत्तर न पहुँचा । इसका कारण यह हो सकता है कि कुछ दिनों पहले मेरी एक पेटी, जिसमें बहुत-से कामके कागज तथा पत्र आदि थे, खो गयी थी। सम्भव है, उसीमें आपका पत्र रहा हो और इसीसे उत्तर न जा सका हो। इस पत्रमें भी पता न रहनेसे मैं इसका उत्तर डाकद्वारा आपको न लिख सका ।

आप मेरे लेख 'कल्याण' में पढ़ते हैं और वे आपको अच्छे लगते हैं सो आपके प्रेमकी बात है ।

आपका शरीर कमजोर है । इसके लिये आपको नियमित व्यायाम और दूधका सेवन अधिक करना चाहिये । साथ ही बड़ी सावधानीसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये ।

आप श्रीमारुतिजी (श्रीहनूमान्‌जी) की सेवा करते हैं सो बहुत ठीक है । आपने लिखा कि 'मैं सेवा गुप्तरूपसे करता

आपने लिखा कि और भी बहुत-सी बातोंको लेकर खटपट बनी ही रहती है। आपसे पूछनेकी मनमें आती है; किन्तु फिर यह मनमें आ जाता है कि 'भजन-ध्यानसे यह सब मिट जायगी' सो ठीक है; परन्तु हमसे पूछनेमें आपको कोई संकोच नहीं करना चाहिये।

आपने लिखा कि 'काम करते समय नाम-जप खूब अच्छी तरह हो सकता है—यह तो खूब विश्वास है।' सो ठीक है, यदि काम करते समय जप, ध्यान और प्रसन्नता, शान्ति रहे तो फिर काममें अधिक समय लगाया जाय तो भी कोई हर्ज नहीं, क्योंकि ऐसा काम भी उत्तम साधन है (गीता ८। ७, १८। ५७)।

आपने लिखा कि कभी मनमें आता है कि दूध पीना चाहिये और कभी मनमें आता है कि अपने शरीरके लिये इतना अधिक खर्च नहीं करना चाहिये सो ठीक है, यदि हजम हो तो दोनों समय दूध पीना चाहिये। दूध सात्त्विक पदार्थ है। इसके सेवनसे वृत्तियाँ सात्त्विक रहती हैं। यह मेरा अपना अनुभव है। दूधके खर्चको अधिक खर्च नहीं समझना चाहिये। वह तो सादे जीवनमें ही शामिल है।

व्यायामके बारेमें लिखा सो ठीक है, व्यायाम नियमपूर्वक करना चाहिये। शीर्षासन १० मिनटसे ज्यादा नहीं करना चाहिये।

आपने अपने मनके अनुकूल ही उत्तर न लिखनेके लिये लिखा सो ठीक है, आपके मनके अनुकूल ही सब बातें नहीं लिखी हैं। आपकी प्रकृति, स्वास्थ्य, समय, कार्यकी परिस्थिति तथा सुविधाको लक्ष्यमें रखकर ही ये सब बातें लिखी गयी हैं।

व्यर्थकी बातोंमें बहुत समय चला जाता लिखा सो व्यर्थ बातें तो न सुननी और न करनी ही चाहिये। इस विषयमें जितना संयम करें, उतना ही अच्छा है, और आपमें तो प्रायः संयम ही देखा जाता है। यदि योग्यतासे उचित मात्रामें बोलनेका काम पड़े तो उसके लिये ग्लानि नहीं करनी चाहिये। बात करते समय बात करनेवालेके स्थानमें या उसके अंदर भगवान्‌को देखना चाहिये; फिर बात भी साधन हो सकता है।

[१९]

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने पहले भी पत्र लिखा था, परन्तु मेरा उत्तर न पहुँचा। इसका कारण यह हो सकता है कि कुछ दिनों पहले मेरी एक पेटी, जिसमें बहुत-से कामके कागज तथा पत्र आदि थे, खो गयी थी। सम्भव है, उसीमें आपका पत्र रहा हो और इसीसे उत्तर न जा सका हो। इस पत्रमें भी पता न रहनेसे मैं इसका उत्तर डाकद्वारा आपको न लिख सका।

आप मेरे लेख 'कल्याण' में पढ़ते हैं और वे आपको अच्छे लगते हैं सो आपके प्रेमकी बात है।

आपका शरीर कमजोर है। इसके लिये आपको नियमित व्यायाम और दूधका सेवन अधिक करना चाहिये। साथ ही बड़ी सावधानीसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

आप श्रीमारुतिजी (श्रीहनूमान्‌जी) की सेवा करते हैं सो बहुत ठीक है। आपने लिखा कि 'मैं सेवा गुप्तरूपसे करता

आपने लिखा कि और भी बहुत-सी बातोंको लेकर खटपट बनी ही रहती है। आपसे पूछनेकी मनमें आती है, किन्तु फिर यह मनमें आ जाता है कि 'भजन-ध्यानसे यह सब मिट जायगी' सो ठीक है; परन्तु हमसे पूछनेमें आपको कोई संकोच नहीं करना चाहिये।

आपने लिखा कि 'काम करते समय नाम-जप खूब अच्छी तरह हो सकता है—यह तो खूब विश्वास है।' सो ठीक है, यदि काम करते समय जप, ध्यान और प्रसन्नता, शान्ति रहे तो फिर काममें अधिक समय लगाया जाय तो भी कोई हर्ज नहीं, क्योंकि ऐसा काम भी उत्तम साधन है (गीता ८। ७, १८। ५७)।

आपने लिखा कि कभी मनमें आता है कि दूध पीना चाहिये और कभी मनमें आता है कि अपने शरीरके लिये इतना अधिक खर्च नहीं करना चाहिये सो ठीक है, यदि हजम हो तो दोनों समय दूध पीना चाहिये। दूध सात्त्विक पदार्थ है। इसके सेवनसे वृत्तियाँ सात्त्विक रहती हैं। यह मेरा अपना अनुभव है। दूधके खर्चको अधिक खर्च नहीं समझना चाहिये। वह तो सादे जीवनमें ही शामिल है।

व्यायामके बारेमें लिखा सो ठीक है, व्यायाम नियमपूर्वक करना चाहिये। शीर्षासन १० मिनटसे ज्यादा नहीं करना चाहिये।

आपने अपने मनके अनुकूल ही उत्तर न लिखनेके लिये लिखा सो ठीक है, आपके मनके अनुकूल ही सब बातें नहीं लिखी हैं। आपकी प्रकृति, स्वास्थ्य, समय, कार्यकी परिस्थिति तथा सुविधाको लक्ष्यमें रखकर ही ये सब बातें लिखी गयी हैं।

व्यर्थकी बातोंमें बहुत समय चला जाता लिखा सो व्यर्थ बातें तो न सुननी और न करनी ही चाहिये। इस विषयमें जितना संयम करें, उतना ही अच्छा है, और आपमें तो प्रायः संयम ही देखा जाता है। यदि योग्यतासे उचित मात्रामें बोलनेका काम पड़े तो उसके लिये ग्लानि नहीं करनी चाहिये। बात करते समय बात करनेवालेके स्थानमें या उसके अंदर भगवान्‌को देखना चाहिये, फिर बात भी साधन हो सकता है।

[१९]

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने पहले भी पत्र लिखा था, परन्तु मेरा उत्तर न पहुँचा। इसका कारण यह हो सकता है कि कुछ दिनों पहले मेरी एक पेटी, जिसमें बहुत-से कामके कागज तथा पत्र आदि थे, खो गयी थी। सम्भव है, उसीमें आपका पत्र रहा हो और इसीसे उत्तर न जा सका हो। इस पत्रमें भी पता न रहनेसे मैं इसका उत्तर डाकद्वारा आपको न लिख सका।

आप मेरे लेख 'कल्याण' में पढ़ते हैं और वे आपको अच्छे लगते हैं सो आपके प्रेमकी बात है।

आपका शरीर कमजोर है। इसके लिये आपको नियमित व्यायाम और दूधका सेवन अधिक करना चाहिये। साथ ही बड़ी सावधानीसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

आप श्रीमारुतिजी (श्रीहनूमान्‌जी) की सेवा करते हैं सो बहुत ठीक है। आपने लिखा कि 'मैं सेवा गुप्तरूपसे करता

हूँ। घरवालोंके नाराज होनेका डर रहता है । उनसे छिपाकर रखनेका फिक्र लगा रहता है।' इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि उत्तम कार्य या साधन छिपाकर करने तो अच्छे हैं। इनका गुप्त रखना कोई पाप नहीं है, बल्कि गुप्त रखनेकी विधि है। परन्तु फिक्र क्यों करना चाहिये । घरवालोंको मालूम हो जानेमें क्यों आपत्ति होनी चाहिये। मेरी समझसे— घरमें प्रतिदिन बड़ोंको प्रणाम करने, उनकी सेवा करने, आज्ञापालन करने और नम्रतापूर्वक समझाकर सन्तोष करानेसे वे सब अपने अनुकूल हो सकते हैं। श्रीमारुतिजीकी भक्ति तो अच्छी बात है, घरवालोंके अनुकूल रहकर उनकी सेवा करनेसे—वे इस भक्तिसे नाराज क्यों होने लगे ? इसपर भी यदि आप यह समझें कि उनको सन्तोष नहीं है तो गुप्तरूपसे ही श्रीमारुतिजीकी भक्ति करते रहिये।

श्रीहनूमान्‌जीकी भक्ति करना बहुत उत्तम है, हनूमान्‌जी भगवान्‌के परम भक्त हैं, अतएव हनूमान्‌जीकी भक्तिसे श्रीभगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं।

ध्यानके समय नींद सताने लगती है, इसके नाशके लिये श्रीरामायणके दोहे-चौपाई और छन्द आदिका अर्थ समझनेमें बुद्धिको लगाना चाहिये । बुद्धिमें चेतनता आनेसे मन लग सकता है और नींद दूर हो सकती है। श्रीरामायणके अध्ययनसे श्रीहनूमान्‌जी तो प्रसन्न होते ही हैं।

आपने लिखा कि 'मुझे दो साल हो गये, तीसरा भी आरम्भ हो गया, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ।' सो इसके लिये साहस और उत्साहको कम न होने देना चाहिये ।

किसी आदमीको पुरानी बीमारी हो, और वह कुछ ही दिन चिकित्सा करवाकर ऊब जाय तो उसकी बीमारी कैसे मिटेगी ? पुराने रोगके नाशके लिये तो दीर्घकालतक दवा लेनेकी जरूरत है। फिर यह तो अनेकों जन्मोंका रोग है, इससे छुटकारा पानेके लिये बहुत दिनोंतक निरन्तर साधन करनेकी आवश्यकता है। कुछ ही दिनोंमे सफलता न मिले तो उत्साहको कम न होने देना चाहिये। बल्कि उत्तरोत्तर अधिक उत्साह और उमंगके साथ साधन करना चाहिये। दूसरे, भजन-ध्यानसे बढ़कर कोई वस्तु है ही नहीं, अतएव इसमें जरा भी शिथिलता नहीं करनी चाहिये।

आपका मन अधिक-से-अधिक पाठ करने और सीताराम-सीताराम रटनेका होता है, सो बहुत अच्छी बात है। घरवालोंकी नाराजी मिटानेके लिये उनकी सेवा करनी चाहिये, और मनकी सारी परिस्थिति उन्हें विनम्रताके साथ समझानी चाहिये तथा जहाँतक हो, उन्हें पूरा सन्तोष कराना चाहिये।

आपके घरवाले आपका विवाह करनेपर जोर देते हैं, परन्तु आपका स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण आप विवाह नहीं करना चाहते। इस सम्बन्धमें मेरी तो यह राय है कि वास्तवमें आप अस्वस्थ हों, स्त्रीमें आसक्ति न हो और स्त्रीके भरण-पोषण करनेकी अपनेमें योग्यता न समझते हों तो वैसी हालतमें विवाह न करनेमे कोई हानि नहीं है।

आगेके लिये मेरी यही सलाह है कि विषयोंमें न फँसकर व्यवसायको भी—श्रीभगवान्‌का काम समझकर भगवान्‌को सदा अपने पास मानकर उनकी प्रसन्नताके लिये किया

जाय तो ऐसा निष्काम व्यवसाय भी भजनके ही समान समझा जाता है। काम करते हुए भी भजन-ध्यान कैसे हो सकता है, इस सम्बन्धमें तत्त्व-चिन्तामणि भाग ५ में प्रकाशित 'काम करते हुए भगवत्प्राप्तिकी साधना' शीर्षक लेख देखना चाहिये। और बन सके तो उसके अनुसार चेष्टा करनी चाहिये।

आपको यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌की सेवा कभी निष्फल नहीं होती।

आपने लिखा 'शक्तिहीन मनुष्य कुछ नहीं कर सकता।' सो शक्तिहीन मनुष्यको मनसे भजन-ध्यान आदि करने चाहिये। बलके लिये प्रार्थना करनेपर प्रभुसे बल भी मिल सकता है, पर छोटी बातके लिये उनसे याचना नहीं करनी चाहिये—इसको प्रारब्धके भरोसे छोड़ देना चाहिये, भजन तो केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करना चाहिये।

आपने लिखा 'एक प्रतिष्ठित परिवारमें भजन-ध्यान कैसे हो सकता है?' सो मेरी समझमें नहीं आता कि प्रतिष्ठित परिवारको इसमें क्यों आपत्ति होनी चाहिये? भगवान्‌के भजनमें जाति-वंश किसीकी भी बाधा नहीं रहती तथा मनमें प्रेम और टान हो तो कोई बाधा दे भी नहीं सकते। अतएव भजन-ध्यानके लिये मनमें प्रेम और टान जितनी बढ़ सके, बढ़ानी चाहिये एवं भगवान्‌पर पूरा भरोसा रखकर साधन करते रहना चाहिये। फिर सब विघ्न-बाधाएँ आप ही हट जा सकती हैं और उत्साह भी मिल सकता है।

[२०]

आपका पत्र मिला। मेरे द्वारा दिया हुआ आपके प्रश्नोंका उत्तर मिलनेसे आपको शान्ति मिलती लिखा, सो आपके प्रेमकी बात है। आप रामनाम जपते हैं तथा आपको इससे शान्ति मिलती है सो बहुत आनन्दकी बात है। इस पत्रमें पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार समझना चाहिये।

१. *प्रश्न*—ज्ञानी जब शरीर छोड़ता है, तब उसका पुण्यकर्म सेवा करनेवालेको मिलता है और पापकर्म निन्दकको। सो क्या बात है? ज्ञानीके तो कुछ भी कर्म नहीं रहता तो फिर दूसरेको कैसे मिलता है? वह तो सञ्चित, प्रारब्ध और आगामी—सबसे मुक्त हो जाता है।

उत्तर—आपका लिखना बहुत ठीक है। वास्तवमें ज्ञानीके सारे कर्म भस्म हो जाते हैं। तब सेवा करनेवालेको ज्ञानीके पुण्यकर्म मिलते हैं और निन्दा करनेवालेको पापकर्म—यह मानना असङ्गत है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जो ज्ञानीकी सेवा करता है, उसे सेवाके फलस्वरूप पुण्य होता है, और जो उसकी निन्दा करता है, उसे निन्दाके फलस्वरूप पाप लगता है। इसमें एक बात और भी समझनेकी है। वह यह कि किसीकी भी सेवा की जायगी तो पुण्य होगा, और किसीकी निन्दा की जायगी तो पाप होगा। किन्तु जैसे सामान्यतः जलमात्रमें शौच जाना ही पाप है, परन्तु श्रीगङ्गाजीमें शौच जानेसे अधिक पाप लगता है, इसी प्रकार ज्ञानीकी निन्दा करनेसे अधिक पाप लगता है और उसकी सेवा करनेसे अधिक पुण्य होता है।

१. *प्रश्न*—योगभ्रष्ट पुरुष पूर्वके अभ्याससे फिर योगमें प्रवृत्त हो जाता है तो पूर्वमें यदि बुरा कर्म किया है तो उसका संस्कार भी तो पापकर्ममें प्रवृत्त करेगा, इससे वह फिर योगभ्रष्ट हो जायगा सो क्या बात है?

उत्तर—आपका पूछना ठीक है, किन्तु जिस प्रकार एक मनुष्यको किसी दूसरेके कुछ रुपये देने हैं। वह इस वक्त रुपये पास न होनेसे चुका तो नहीं सकता, किन्तु अच्छी नीयतसे उसे चुका देनेका वादा करता है, तो भला आदमी उसे अवसर दे देता है, उसपर कोई कड़ी कार्यवाही नहीं करता। इसके बाद वह जब रुपये कमाकर उसे दे देता है तब ऋणसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार योगभ्रष्टके पूर्वाभ्याससे साधनकी ओर झुक जानेपर पूर्वके बुरे संस्कारोंका प्राबल्य रुक जाता है और बादमें उसके साधन करते रहनेसे वे बुरे संस्कार नष्ट हो जाते हैं। तब फिर वे उसे पापकर्ममें प्रवृत्त करके पुनः योगभ्रष्ट नहीं कर सकते।

२. *प्रश्न*—आप लिखते हैं कि कर्मयोगसे मोक्ष मिलता है और ज्ञानसे भी, किन्तु कर्मयोगसे तो अन्तःकरणकी शुद्धि होती है फिर मुक्ति कैसे मिलेगी? मुक्ति तो ज्ञानसे ही मिलती है। इसमें क्या बात है?

उत्तर—कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों ही अलग-अलग स्वतन्त्र साधन हैं। इन दोनोंका जो एक फलरूप ज्ञान है, वह इनसे विलक्षण है। कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धि होनेके बाद ज्ञानयोगका साधन करनेसे भी मुक्ति होती है,

किन्तु कर्मयोगसे अन्तःकरण शुद्ध होकर ईश्वरकी कृपासे स्वतः ही ज्ञान हो जाता है (गीता ४ । ३८, १८ । ५६) । इस प्रकार कर्मयोग स्वतन्त्र साधन भी है । इसीलिये कर्मयोग और ज्ञानयोग—इन दोनोंको अलग-अलग स्वतन्त्र साधन लिखा है (गीता ५ । ४-५, १३ । २४) ।

४. *प्रश्न*—किसी आदमीने किसीका घर जला दिया या किसीको मार डाला तो उसको तो उसके पापका फल मिला, फिर घर जलानेवाला या मारनेवाला पापका भागी क्यों बनता है ?

उत्तर—जिसका घर जलता है या जो मरता है, उसका तो यह प्रारब्धका ही फल है, किन्तु जलानेवाले या मारनेवालेका यह अपराध है । जिस प्रकार अदालत किसी अपराधीको फाँसी देनेका हुक्म देती है और यदि उस अपराधीको कोई दूसरा आदमी यह समझकर मार डालता है कि इसे मारना तो है ही, राजकर्मचारी मारे या मैं मार डालूँ, तो वह अपराधी समझा जाता है और उसे इसका दण्ड मिलता है, क्योंकि उसको उसे मारनेका कोई हक या हुक्म नहीं था । सरकारकी ओरसे अपराधीको फाँसी देनेका स्वतन्त्र प्रबन्ध है । इसी प्रकार परमात्माके राज्यमें अपराधीको दण्ड देनेका स्वतन्त्र प्रबन्ध है । इसीसे कोई यदि किसीका घर जलाता है, मारता है या कष्ट पहुँचाता है तो वह अपराध करता है और दण्डका भागी बनता है ।

५. *प्रश्न*—ध्यान करते समय यदि भगवान्का दूसरा रूप आ जाय तब क्या करना चाहिये ? जैसे रामरूपका

ध्यान करते समय श्रीकृष्ण या विष्णुरूप आ जाय तो किस रूपका ध्यान करना चाहिये ? और इष्टदेवके ध्यानके समय साधक अपने गुरुदेवका या किसी महापुरुषका ध्यान कर सकता है या नहीं ?

उत्तर—अपने इष्टस्वरूपका ध्यान करते समय यदि दूसरा रूप आ जाय अर्थात् रामरूपका ध्यान करते समय श्रीकृष्ण, विष्णुरूप आ जाय तो अपने इष्टरूपके ध्यानसे दूसरे रूपके ध्यानका अधिक आदर करना चाहिये। क्योंकि ध्यान जो हम करते हैं, वह हमारी इच्छासे किया जाता है और ध्यान करते समय जो दूसरा रूप आता है, वह प्रभुकी इच्छासे आता है। इसलिये प्रभुकी इच्छासे आया हुआ रूप अधिक आदरणीय है। परन्तु यह विश्वास रखना चाहिये कि सारे रूप एक ही भगवान्‌के हैं। अपने इष्टदेवके ध्यानके साथ किसी महापुरुष या गुरुदेवका ध्यान करनेमें कोई दोष नहीं है, किन्तु केवल एक इष्टदेवका ही ध्यान करना सबसे उत्तम है।

६. *प्रश्न*—भगवान् जब दर्शन देते हैं, तब क्षीरसमुद्रसे देते हैं या वैकुण्ठलोकसे या साकेतलोकसे अथवा अन्तर्यामी सर्वव्यापी ब्रह्म दर्शन देते हैं—इसमें क्या बात है तथा कर्मका फल भी कौन देते हैं ?

उत्तर—क्षीरसमुद्र, साकेतलोक, वैकुण्ठ—ये सब एक ही परमधामके ही नाम हैं। उस एक परमधामको ही श्रीकृष्णके उपासक गोलोक, श्रीरामके उपासक साकेतलोक, विष्णुके उपासक वैकुण्ठलोक कहते हैं। उस परमधामका स्वामी सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ सृष्टिकर्ता परमेश्वर है।

वह सर्वोपरि है। उससे ऊपर कोई नहीं है। वही भक्तोंको दर्शन देता है और वही सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है (गीता १४ । २७) तथा वही जीवोंको उनके कर्मोंके अनुसार फल देता है।

७. *प्रश्न*—यदि भगवान्‌का दर्शन हो जाय और भगवान् पहचाननेमें न आयें तो उसकी मुक्ति हो जायगी कि नहीं ?

उत्तर—भगवान्‌का दर्शन होनेसे बहुत लाभ है, किन्तु यदि भगवान्‌को पहचाना नही तो उसको मुक्ति देनेके लिये भगवान् बाध्य नही हैं, अनन्य भक्तिसे ही बाध्य है (गीता ११ । ५४) । जब श्रीकृष्ण भगवान्‌का अवतार हुआ, उस समय जिन्होंने उनको नहीं पहचाना, उनकी मुक्ति नही हुई, बल्कि भगवान्‌को न पहचाननेवालोंको मूढ़ बतलाया है (गीता ९ । ११, १२, ७ । २५) ।

८. *प्रश्न*—भगवान् राम, विष्णु और कृष्णमें क्या भेद है ? रामायणमें, विष्णुपुराणमें कहींपर भेद लिखा है सो क्या बात है ? जो अवतार लेते हैं सो किनका अवतार होता है, कारण तो कोई होगा ?

उत्तर—भगवान् राम, कृष्ण, विष्णुमें कोई भेद नहीं है। केवल नामरूपका भेद है । वस्तुतः कोई भेद नहीं है। जैसे एक ही पुरुष पहले ब्रह्मचर्याश्रममें रहे और पीछे गृहस्थ बन जाय तथा गृहस्थसे संन्यासी बन जाय तो वस्तुतः वह एक ही है, केवल वेशमात्रका भेद है। वह सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परमात्मा ही अवतार लेता है। रामायणमें रामको तथा विष्णुपुराणमें विष्णु-कृष्णको सर्वोपरि कहा है,

उसका यह अर्थ है कि उपासकको अपने इष्टरूपको सर्वोपरि मानकर उपासना करनी चाहिये। इससे उस रूपमें श्रद्धा-प्रेम होकर साधकको शीघ्र सफलता मिलती है। श्रीपार्वतीजी भगवान् शङ्करके लिये तपश्चर्या करती हैं। उनसे कहा गया कि वे शङ्करकी उपासना छोड़कर विष्णुकी ही आराधना करें, किन्तु श्रीपार्वतीजी इससे विचलित न हुईं और अपने इष्टकी आराधनामें ही लगी रहीं, इससे उन्होंने सफलता प्राप्त की। इसी तरह साधकको अपने इष्टरूपको ही सर्वोपरि मानकर उन्हींकी उपासना करनी चाहिये।

९. *प्रश्न*—भगवान्‌की अहैतुकी कृपा होती है या नहीं? अगर होती है तो किस समय होती है? किस जीवपर होती है? या सबपर होती है?

उत्तर—भगवान्‌की कृपा अहैतुकी ही होती है और वह सभीपर सब समय रहती है। किसी समय जो हेतुसे हुई दीखती है, उसमें साधकके श्रद्धा-प्रेमके तारतम्यके कारण ही कृपामें भी न्यूनाधिकता दीखती है।

१०. *प्रश्न*—प्रारब्धकर्म मिटता है या नहीं? भगवान्‌के दर्शनमें या उनके द्वारा मारे जानेमें कौन विशेष लाभदायक है? और कल्कि-अवतार हुआ है या नहीं? राजनारायणजी लिखते हैं सो क्या बात है? पापकर्म तो बहुत बढ़ गया, वर्णव्यवस्था भी सब छोड़ रहे हैं। आपकी क्या सम्मति है?

उत्तर—प्रारब्ध प्रायः भोगनेसे ही मिटता है। भगवान्‌का वरदान आदि कोई विशेष कारण हो जाय तो भगवान्‌की कृपासे विना भोगे ही मिट जाता है, क्योंकि भगवान् तो असम्भव-

को भी सम्भव कर सकते हैं। भगवान्‌के हाथसे मरनेकी अपेक्षा उनका दर्शन होना श्रेष्ठ है, क्योंकि हाथसे मरनेकी आशासे तामस भावका अवलम्बन करना पड़ता है। कल्कि-अवतार अभी नहीं हुआ और जल्दी होनेकी आशा भी नहीं है। अभी वह स्थिति नहीं आयी है, जिसमे भगवान्‌को अवतार लेना पड़े।

आपने पूछा कि मुझे मृत्युका भय लगता है, उसको छोड़ दूँ या याद रक्खूँ। शास्त्रोंमें तो याद रखनेको लिखा है। सो ठीक है। मृत्युको याद करनेका यह तात्पर्य है कि मृत्युके याद रहनेसे साधन तेज होता है, भगवान्‌की स्मृति अधिक होती है। यदि ऐसा न हो तो मृत्युको याद रखकर चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं।

[२१]

आपका पत्र मिला। समाचार जाने। × × × × आपका शरीर बहुत ही कमजोर हो गया, आप चलते-चलते गिर पड़ने लगते हैं, इससे देखनेवाले हँसते हैं और आपको चिढ़ाते हैं। सो लोग तो ऐसा कर सकते हैं, परन्तु आपको लोगोंके हँसने-चिढ़ानेपर दुःख नही करना चाहिये।

आपको दूध पीनेसे कुछ घृणा-सी होती है—ऐसा लिखा सो दूध तो सब प्रकारसे हितकर चीज है, उसमें घृणा नहीं होनी चाहिये। आपके शरीरमें शक्ति न होनेसे आप अन्य व्यायाम न कर सकें तो साधारण आसनोंका अभ्यास करना चाहिये।

स्वप्नदोषके निवारणके लिये मन, इन्द्रिय, शरीरका संयम रखना चाहिये। आठ प्रकारके मैथुनोंमेंसे* किसी भी मैथुनका दोष न आवे—ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। मनको विवेक-विचारपूर्वक समझाना चाहिये। विवेक-विचारसे मन न माने, तो हठसे संयम करना चाहिये। आप ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं सो अच्छी बात है। ब्रह्मचर्यके पालनकी चेष्टा करनेपर भी स्वप्नदोष होते हैं तो फिर यही समझा जाता है कि यह पूर्वजन्मके पापोंका फलरूप भोग ही है।

आपने लिखा कि 'मैं जो मारुतिजीकी भक्ति करता हूँ, उसे यदि घरवालोंके सामने प्रकट कर दूँ तो मेरी भक्तिमें बाधा आती है, क्योंकि मुझे हर समय पाठ वगैरह करनेमें संकोच हो जायगा।' यदि ऐसी बात है तो प्रकट न करें।

आप श्रीमारुतिजीकी भक्तिमें समय-कुसमय तथा पवित्र-अपवित्रका खयाल नहीं करते, किसी भी समय पाठ कर लेते हैं, नित्य पैंतालीस पाठ करते हैं और अवशेष समय 'सीताराम-सीताराम' रटते रहते हैं। सो बहुत ठीक है। हो सके तो पाठ मानसिक करना चाहिये।

---

* स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥

'स्त्रीका स्मरण, स्त्रीसम्बन्धी बातचीत, स्त्रियोंके साथ खेलना, स्त्रीको देखना, स्त्रीसे गुप्त भाषण करना, स्त्रीसे मिलनेका सङ्कल्प करना, चेष्टा करना और स्त्रीसङ्ग करना—ये आठ प्रकारके मैथुन माने गये हैं।'

मानसिकका महत्त्व भी बहुत है और अपवित्र अवस्थामें भी मानसिक पाठ किया जाता है ।

अब इतने पाठ भी नहीं हो पाते, न जाने भगवान्‌की क्या मरजी है—लिखा सो भगवान्‌की मरजी तो बहुत ही अच्छी है, केवल आपके प्रयत्नकी कमी है । पाठ करते समय निद्रा ज्यादा सताती है, इसके लिये आपको पद्मासन, सिद्धासन अथवा स्वस्तिकासनमेंसे किसी आसनसे बैठना चाहिये । अन्न अधिक न खाना चाहिये और खट्टे पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये । इससे आलस्य कम हो सकता है ।

आपने लिखा कि रामायणका पाठ करनेपर सबको मालूम हो जायगा और लोग व्यङ्ग करने लगेंगे । सो उनके व्यङ्ग करनेकी सम्भावना और भयसे आपको पाठसे वञ्चित क्यों रहना चाहिये । आपको लोगोंका व्यङ्ग सहना उचित है । आपके शरीरको देखकर लोग व्यङ्ग करें तो भी उसे सहना चाहिये और उनसे कहना चाहिये कि यह सब प्रारब्धका भोग है ।

पिताजीके कहे अनुसार आप मुकद्दमा आदिके काममें हाथ नहीं बटाते तथा अखबार भी पढ़ना नहीं चाहते सो ठीक है, किन्तु यदि करनेकी शक्ति हो तो पिताजीके आज्ञानुसार जो न्याययुक्त काम हो उसे करना चाहिये, चाहे वह मुकद्दमा-मामला ही क्यों न हो । हाँ, अन्यायका काम हो, या करनेकी शक्ति न हो तो पिताजीको विनयपूर्वक समझा देना चाहिये । अखबार पढ़नेसे

पिताजीको सन्तोष हो तो पढ़ सकते हैं। बिना आसक्तिके पढ़नेपर आपपर उसका बुरा असर नहीं हो सकता।

आपको पिताजी विवाहके लिये कहते हैं, किन्तु आपकी इच्छा विवाह करनेकी नही है, सो ठीक ही है। जब आपका शरीर इतना अशक्त है, आप उठ-बैठ भी नही सकते तो ऐसी अशक्तावस्थामें आपको विवाह कभी नही करना चाहिये। पिताजीको विनयपूर्वक समझा देना चाहिये। आपने लिखा कि विवाह नही करता तो पिताजीका अपयश होता है, लोग आक्षेप करते हैं और विवाह करता हूँ तो वह भी एक बड़ा भयङ्कर प्रश्न होता है, क्योंकि उससे मेरी और एक स्त्रीकी दुर्दशा होगी। सो ठीक है। ऐसी स्थितिमें विवाह करनेमें ही अधिक बुराई है, न करनेमें नहीं। आपके लिये माता-पिताको अपयश-आक्षेपसे बचाना विवाह न करनेसे ही सम्भव है। हाँ, जब शरीरमे पर्याप्त शक्ति आ जाय और आपकी इच्छा हो तब भले ही कर सकते हैं।

[२२]

कलकत्तेसे एक दसवी कक्षाके विद्यार्थीका पत्र मिला है। नाम-पता न होनेसे उन्हें पत्र न दिया जा सका। उन्होंने लिखा है कि मेरे कोई भी काम करनेसे मेरे पिताजी मुझपर क्रोधित हो जाते है, इस विषयमें क्या करना चाहिये सो ठीक है, इस सम्मति यह है—

आपको अपने पिताजीके सङ्केत, हुक्म और सन्तोषके अनुसार चेष्टा करनी चाहिये । इसीमें आपका सब प्रकारसे कल्याण है । श्रुति कहती है—

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव ।
(तैत्तिरीय० १ । ११)

'माता, पिता और आचार्यको देवता (ईश्वरके तुल्य) माननेवाला हो ।'

और मनुजी कहते हैं—

य मातापितरौ क्लेश सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृति शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥
(मनु० २ । २२७)

'मनुष्यके उत्पत्ति-समयमें जो क्लेश माता-पिता सहते है, उसका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता ।'

इम लोक मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुशुश्रूषया त्वेव ब्रह्मलोक समश्नुते ॥
(मनु० २ । २३३)

'माताकी भक्तिसे इस लोकको, पिताकी भक्तिसे मध्य लोकमें और इसी प्रकार गुरुकी भक्तिसे ब्रह्मलोकको पाता है ।'

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्य हि पुरुषस्य समाप्यते ।
एष धर्म पर साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥
(मनु० २ । २३७)

'इन तीनोंकी सेवासे पुरुषका सब कर्तव्यकर्म पूर्ण होता है, यही साक्षात् परम धर्म है, इसके अतिरिक्त अन्य सब धर्म 'उपधर्म' कहे जाते हैं ।'

अतः जिस प्रकार माता-पिताको सन्तोष हो, आपको वही करना चाहिये । उनकी इच्छा, सङ्केत और आज्ञाके अनुसार अपनेको बना लेना चाहिये । इस प्रकार करनेपर उनका क्रोध शान्त हो सकता है और उनको सन्तोष भी अवश्य होना चाहिये । इसपर भी यदि सन्तोष न हो तो आत्मघातकी कल्पना तो कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिये । यदि वे नाराज हो जायँ और आपको छोड़ दें तो उसे सह लेना चाहिये. आप जीते रहेंगे तो फिर भी कभी उन्हें सन्तोष करा सकेंगे । और सन्तोष न भी करा सकेंगे तो भी उसमे इतना पाप नही है, जितना आत्महत्यामे है । इसलिये कितना भी कष्ट क्यो न हो, मनुष्यको आत्महत्या तो कभी करनी ही नही चाहिये । आत्महत्या करनेसे इस जीवनसे हाथ धो बैठनेमात्रका ही नुकसान नही है, उसकी परलोकमें बहुत दुर्गति होती है । आत्महत्या करनेवालेको तो घोर नरककी प्राप्ति बतलायी गयी है ।

श्रुति कहती है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता ।
ताᳬस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

(ईशा० ३)

'जो मनुष्य आत्माके हनन करनेवाले है वे मरकर घोर अन्धकारसे आच्छादित आसुरी योनियोंको प्राप्त होते है ।'

[२३]

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। समाचार जाने। आपसे प्रार्थना है कि मुझे अपने छोटे भाईके समान समझकर समान व्यवहारके ही शब्दोंका प्रयोग किया कीजिये। 'पूज्यपाद' और 'चरण-वन्दन' आदि शब्दोंका प्रयोग करके मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये। आपके प्रश्नोंका क्रमशः उत्तर दिया जाता है—

१. प्रश्न—श्रीभगवान्‌के स्वरूपका ध्यान हृदयमें करना चाहिये अथवा बाहर सवा हाथ दूर तथा और हाथकी ऊँचाईपर? दोनोंमें उत्तम कौन है?

उत्तर—श्रीभगवान्‌के स्वरूपका ध्यान दोनों प्रकारसे ही उत्तम है। दोनों ही प्रकारके ध्यान मनसे होते हैं, इसलिये इनमें उत्कृष्टता और निकृष्टताका भेद नहीं है। अपनी रुचि और सुविधाके अनुसार करना चाहिये।

२. प्र०—ध्यान भगवान्‌के नख-शिख समस्त रूपका करना चाहिये अथवा केवल मुखारविन्द अथवा चरणारविन्दका? यदि चरणारविन्दका किया जाय तो सरकार जिस प्रकार खड़े हैं, वैसे ही पंजोंका अथवा तलवोंका? उत्तम कौन-सा है?

उ०—ध्यानके आरम्भमें चरणारविन्दोंसे प्रारम्भ करके मस्तकतक पूरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। एक बार पूरा-पूरा ध्यान हो जानेपर केवल मुखारविन्द या चरणारविन्दपर ही अपने मनको टिका देना चाहिये। दासभावके भक्तोंको प्रधानतः चरणारविन्दका और सखाभावके भक्तोंको प्रधानतः मुखारविन्दका ध्यान करना चाहिये। चरणोंका ध्यान जैसे भगवान् खड़े हैं,

वैसे हो अथवा नीचेसे उनके तलवोंको ही देखा जाय। दोनों ही अपनी रुचि और प्रीतिपर निर्भर करते हैं। इनमें कोई श्रेष्ठ-कनिष्ठका भेद नहीं है।

३. प्र०—प्रातःकाल और सायंकाल कैसा ध्यान करना चाहिये ? इसके अतिरिक्त काम करते समय ध्यानका क्या स्वरूप होना चाहिये ?

उ०—जो ध्यान प्रातःकालका है, वही सायंकालका भी। अपने इष्टदेवके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, रूप, लीला आदिका दोनों समय ही चिन्तन करते हुए ध्यान करना चाहिये। समयके अनुसार सेवा-पूजाकी प्रणालीमें भेद हो सकता है। विभिन्न लीलाओंका भी चिन्तन कर सकते हैं, परंतु इष्टदेव एक ही होने चाहिये। काम करते समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि भगवान् सर्वदा मेरे साथ हैं—मैं चलता हूँ तब चलते हैं, बैठता हूँ तब बैठते हैं, खाता हूँ तब खाते हैं, मेरी आँखोंसे एक क्षणके लिये भी ओझल नहीं होते। उनका वरद हस्त मेरे सिरपर सदा बना ही रहता है। वे नित्य निरन्तर अपने प्रेम, कृपा आदि गुणोंकी सुधा-धारासे मुझे सराबोर किये रहते हैं। उनकी मन्द-मन्द मुसकान, प्रेमभरी चितवन, पीताम्बरकी झलक और नख-छटाका प्रकाश क्षण-क्षणपर अनुभव करते रहना चाहिये। ऐसा अभ्यास करनेपर थोड़े ही दिनोंमें बड़े अमृतमय रसका अनुभव होने लगता है।

४. प्र०—ध्यान युगल-सरकारका करना चाहिये अथवा केवल सरकारका ही ? कारणसहित बतलाइये।

उ०—श्रीभगवान्में युगल और एकका भेद नहीं है। एकमें

भी युगल है और युगल भी एक ही हैं। इसलिये ध्यान चाहे युगल छबिका किया जाय—चाहे केवल भगवान्के श्रीविग्रहका। एक ही बात है। साधकोंकी अपनी रुचि-प्रवृत्ति, प्रीति, श्रद्धा और अधिकारके अनुसार ही उनके लिये ध्यानकी व्यवस्था है। आपके पत्रको देखते जान पड़ता है कि आपको युगल-सरकारका ही ध्यान करना चाहिये।

५. प्र०—प्रारम्भमें ध्यान कितनी देरतक करना चाहिये और कितनी बार ?

उ०—प्रारम्भमें कम-से-कम प्रातःकाल और सायंकाल नियम-से आध-आध घंटे तो ध्यान अवश्य ही करना चाहिये। कितनी बारका कोई नियम नहीं है। उत्तम तो यही है कि मनुष्य प्रति-क्षण ध्यानमग्न रहे। इसलिये अधिक-से-अधिक ध्यानकी चेष्टा ही कर्तव्य है।

६. प्र०—ध्यानके साथ नाम-जप करना चाहिये, अथवा नहीं ? मन-ही-मन स्वरूपका वर्णन और मनके नेत्रोंसे भगवान्की झाँकीका दर्शन करना भी तो ठीक है न ?

उ०—जप ध्यानमे बड़ा ही सहायक है। इससे साधक निरन्तर जाग्रत् रहता है और इष्टदेवका मन्त्र अथवा नाम उसे प्रतिक्षण ध्यानमें लगनेकी प्रेरणा करता रहता है। मन-ही-मन रूपका वर्णन और मनके नेत्रोंसे उनकी झाँकीका दर्शन भी श्रेष्ठ है। दोनोंमेंसे जो आपके अनुकूल पड़े वही करना चाहिये।

७. प्र०—ध्यानके समय कौन-कौनसे विघ्न आते हैं, और उनका निराकरण किस प्रकार करना चाहिये ?

उ०—ध्यानके मुख्य विघ्न दो हैं—आलस्य और विक्षेप। आलस्यका अर्थ है—मनके तन्द्रित हो जानेके कारण भगवान्‌का चिन्तन न होना। विक्षेपका अर्थ है—भगवान्‌के अतिरिक्त मनमें अन्य विषयोंका आना—मनका विषयोंमें भटकना। इन विघ्नोंके निवारणके चार उपाय हैं—(१) ध्यानके समय पीठकी रीढ़को सीधा रक्खा जाय, (२) नेत्र खुले रहें, (३) सावधानीके साथ नाम-जप होता रहे और (४) शास्त्रानुकूल भगवान्‌के गुण, प्रभाव और लीलाओंका विवेचन हो।

८. प्र०—ध्यानके सहायक क्या-क्या हैं ?

उ०—मुख्यतः चार बातें हैं। श्रद्धा और प्रेमसे सत्सङ्ग करना, अपने इष्टदेवके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य आदिसे परिपूर्ण ग्रन्थोंका मननपूर्वक स्वाध्याय करना, प्रेमके साथ रसका अनुभव करते हुए नाम-जप करना, तथा विषयोंमें उपरति और वैराग्य होना।

९. प्र०—ध्यानके अभ्यासीकी दिनचर्या कैसी होनी चाहिये ?

उ०—ध्यानके अभ्यासीको कभी ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे उसके मनमें उद्वेग, चिन्ता, भय और शोककी वृद्धि हो। मनको केवल सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त ही नहीं—इष्टदेवके चिन्तन-स्मरणमें संलग्न रखना चाहिये। व्यवहारमें स्मरणकी जितनी वृद्धि होगी, उतना ही ध्यान भी अधिक लगेगा। इसलिये ध्यानके अभ्यासीकी वैसी ही दिनचर्या होनी चाहिये जिससे अधिक-से-अधिक भगवत्स्मरण हो। अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन—दीनजनोंकी सेवा, महापुरुषोंका सङ्ग, स्वाध्याय, जप, ध्यान, पूजा आदि भगवत्प्राप्तिके साधनरूप कर्मोंमें ही उसे लगे रहना चाहिये।

१०. प्र०—विषयोंका यथार्थ स्वरूप कैसे समझें, जिससे उनकी ओरसे मन फिर जाय ?

उ०—किसी भी वस्तुका यथार्थ स्वरूप विचारसे ही समझमें आता है। विवेकी पुरुष विषयोंमें दुःख-ही-दुःख देखता है। विषयोंका आसक्तिपूर्वक भोग प्रत्यक्ष ही पुनर्जन्म और नरकका हेतु है। उनके भोगके समयमे भी कुछ-न-कुछ तापका अनुभव होता ही है। वे क्षणभङ्गुर और नाशवान् भी हैं ही। विषयोंमे फँस जानेसे उनके पंजेसे छुटकारा कठिन हो जाता है। इन सब बातोंपर विचार करनेसे इस बातका निश्चय हो जाता है कि विषय वास्तवमें दुःखरूप हैं। अबतक जगत्के इतिहासमें किसी भी मनुष्यको अधिक-से-अधिक विषयोंका भोग करनेपर भी उनसे सन्तोष और शान्ति नहीं मिली है। इसलिये उनकी ओरसे उपराम हो जाना ही श्रेष्ठ है।

११. प्र०—प्रातःकाल नींद टूटते ही और रात्रिमें सोनेके समय क्या प्रार्थना करनी चाहिये ? मुख्यरूपसे क्या करना चाहिये ?

उ०—सोने और जागनेके समय मुख्यतः भगवान्के नाम, गुण, प्रभाव, रूप और लीलाका स्मरण करना चाहिये। अपने मनमें श्रीभगवान्के प्रति जो भाव हों, उन्हें ईमानदारीके साथ उनके चरणोंमे निवेदन करना चाहिये। अपने मनके भावसे मिलते-जुलते अर्थवाले श्लोक और पदोंका उच्चारण करना चाहिये। उनके चुनावमे अपने-अपने स्वभाव और रुचिकी ही प्रधानता होती है। श्लोक अथवा पद याद न हो तो जो जिस भाषामें बातचीत करता है वह उसी भाषामें भगवान्से प्रार्थना करे, क्योंकि वे तो सबकी भाषा समझते हैं।

१०. प्र०—विषयोंका यथार्थ स्वरूप कैसे समझें, जिससे उनकी ओरसे मन फिर जाय ?

उ०—किसी भी वस्तुका यथार्थ स्वरूप विचारसे ही समझमें आता है। विवेकी पुरुष विषयोंमें दुःख-ही-दुःख देखता है। विषयोंका आसक्तिपूर्वक भोग प्रत्यक्ष ही पुनर्जन्म और नरकका हेतु है। उनके भोगके समयमें भी कुछ-न-कुछ तापका अनुभव होता ही है। वे क्षणभङ्गुर और नाशवान् भी हैं ही। विषयोंमें फँस जानेसे उनके पंजेसे छुटकारा कठिन हो जाता है। इन सब बातोंपर विचार करनेसे इस बातका निश्चय हो जाता है कि विषय वास्तवमें दुःखरूप हैं। अबतक जगत्‌के इतिहासमें किसी भी मनुष्यको अधिक-से-अधिक विषयोंका भोग करनेपर भी उनसे सन्तोष और शान्ति नहीं मिली है। इसलिये उनकी ओरसे उपराम हो जाना ही श्रेष्ठ है।

११. प्र०—प्रातःकाल नींद टूटते ही और रात्रिमें सोनेके समय क्या प्रार्थना करनी चाहिये ? मुख्यरूपसे क्या करना चाहिये ?

उ०—सोने और जागनेके समय मुख्यतः भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव, रूप और लीलाका स्मरण करना चाहिये। अपने मनमें श्रीभगवान्‌के प्रति जो भाव हो, उन्हें ईमानदारीके साथ उनके चरणोंमें निवेदन करना चाहिये। अपने मनके भावसे मिलते-जुलते अर्थवाले श्लोक और पदोंका उच्चारण करना चाहिये। उनके चुनावमें अपने-अपने स्वभाव और रुचिकी ही प्रधानता होती है। श्लोक अथवा पद याद न हो तो जो जिस भाषामें बातचीत करता है वह उसी भाषामें भगवान्‌से प्रार्थना करे, क्योंकि वे तो सबकी भाषा समझते हैं।

उ०—ध्यानके मुख्य विघ्न दो हैं—आलस्य और विक्षेप। आलस्यका अर्थ है—मनके तन्द्रित हो जानेके कारण भगवानका चिन्तन न होना। विक्षेपका अर्थ है—भगवान्‌के अतिरिक्त मनमें अन्य विषयोंका आना—मनका विषयोंमें भटकना। इन विघ्नोंके निवारणके चार उपाय हैं—(१) ध्यानके समय पीठकी रीढ़को सीधा रक्खा जाय, (२) नेत्र खुले रहें, (३) सावधानीके साथ नाम-जप होता रहे और (४) शास्त्रानुकूल भगवान्‌के गुण, प्रभाव और लीलाओंका विवेचन हो।

८. प्र०—ध्यानके सहायक क्या-क्या हैं?

उ०—मुख्यतः चार बातें हैं। श्रद्धा और प्रेमसे सत्सङ्ग करना, अपने इष्टदेवके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य आदिसे परिपूर्ण ग्रन्थोंका मननपूर्वक स्वाध्याय करना, प्रेमके साथ रसका अनुभव करते हुए नाम-जप करना, तथा विषयोंमें उपरति और वैराग्य होना।

९. प्र०—ध्यानके अभ्यासीकी दिनचर्या कैसी होनी चाहिये?

उ०—ध्यानके अभ्यासीको कभी ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे उसके मनमें उद्वेग, चिन्ता, भय और शोककी वृद्धि हो। मनको केवल सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त ही नहीं—इष्टदेवके चिन्तन-स्मरणमें संलग्न रखना चाहिये। व्यवहारमें स्मरणकी जितनी वृद्धि होगी, उतना ही ध्यान भी अधिक लगेगा। इसलिये ध्यानके अभ्यासीकी वैसी ही दिनचर्या होनी चाहिये जिससे अधिक-से-अधिक भगवत्स्मरण हो। अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन—दीनजनोंकी सेवा, महापुरुषोंका सङ्ग, स्वाध्याय, जप, ध्यान, पूजा आदि भगवत्प्राप्तिके साधनरूप कर्मोंमें ही उसे लगे रहना चाहिये।

१०. प्र०—विषयोंका यथार्थ स्वरूप कैसे समझें, जिससे उनकी ओरसे मन फिर जाय ?

उ०—किसी भी वस्तुका यथार्थ स्वरूप विचारसे ही समझमें आता है। विवेकी पुरुष विषयोंमें दुःख-ही-दुःख देखता है। विषयोंका आसक्तिपूर्वक भोग प्रत्यक्ष ही पुनर्जन्म और नरकका हेतु है। उनके भोगके समयमें भी कुछ-न-कुछ तापका अनुभव होता ही है। वे क्षणभङ्गुर और नाशवान् भी हैं ही। विषयोंमें फँस जानेसे उनके पंजेसे छुटकारा कठिन हो जाता है। इन सब बातोंपर विचार करनेसे इस बातका निश्चय हो जाता है कि विषय वास्तवमें दुःखरूप हैं। अबतक जगत्के इतिहासमें किसी भी मनुष्यको अधिक-से-अधिक विषयोंका भोग करनेपर भी उनसे सन्तोष और शान्ति नहीं मिली है। इसलिये उनकी ओरसे उपराम हो जाना ही श्रेष्ठ है।

११. प्र०—प्रातःकाल नींद टूटते ही और रात्रिमें सोनेके समय क्या प्रार्थना करनी चाहिये ? मुख्यरूपसे क्या करना चाहिये ?

उ०—सोने और जागनेके समय मुख्यतः भगवान्के नाम, गुण, प्रभाव, रूप और लीलाका स्मरण करना चाहिये। अपने मनमें श्रीभगवान्के प्रति जो भाव हों, उन्हें ईमानदारीके साथ उनके चरणोंमें निवेदन करना चाहिये। अपने मनके भावसे मिलते-जुलते अर्थवाले श्लोक और पदोंका उच्चारण करना चाहिये। उनके चुनावमें अपने-अपने स्वभाव और रुचिकी ही प्रधानता होती है। श्लोक अथवा पद याद न हो तो जो जिस भाषामें बातचीत करता है वह उसी भाषामें भगवान्से प्रार्थना करे, क्योंकि वे तो सबकी भाषा समझते हैं।

१२. प्र०—रातको सोते समय भी नाम-जप होता रहे-इसके लिये क्या उपाय करना चाहिये ?

उ०—यदि नींदके पहले खूब प्रेम और लगनके साथ नाम जप करता रहे और जब-जब नींद टूटे, तब-तब उसको सँभालता रहे तो नाम-जप निरन्तर हो सकता है। यदि नींद टूटनेपर नाम-जप होता न मिले तो हृदयमें बड़ा पश्चात्ताप और वेदना होनी चाहिये, और सच्चे हृदयसे भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये, कि 'हे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि एक क्षणके लिये भी कभी तुम्हारे नामका ताँता न टूटे।' सच्ची प्रार्थना हो, और हृदयमें उत्साह हो तो सोते समय भी नाम-जप हो सकता है।

१३. प्र०—मैं सन्ध्या करना नहीं जानता। क्या इसके बदलेमें ध्यान अथवा नाम-जप किया जा सकता है ?

उ०—प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी द्विजातिके लिये सन्ध्या करना अनिवार्य है। सन्ध्या न करनेसे पाप होता है। अतः सन्ध्याको किसी-न-किसी प्रकार सीख ही लेना चाहिये। जबतक पूरी सन्ध्या याद नहीं हो जाती तबतक केवल गायत्री-मन्त्रसे प्राणायाम, आचमन, मार्जन, सूर्योपस्थान, जप आदि मुख्य-मुख्य क्रिया तो कर ही लेनी चाहिये। यद्यपि ध्यान और जपकी महिमा अनन्त है, फिर भी उनके आश्रयसे नित्यकर्मका लोप नहीं होना चाहिये।

१४. प्र०—उपवास अथवा फलाहारके दिन भी बलिवैश्वदेव करना चाहिये क्या ? कौन-सा फलाहार उत्तम है ? फलाहारके दिन कुत्ते, कौवे आदिके लिये क्या करना चाहिये ?

उ०—उपवासके दिन वलिवैश्वदेवरूप यज्ञ मानसिक करना चाहिये। फलाहारके दिन फलसे। मनुष्य जो भोजन करता है, उसीके द्वारा यह यज्ञ करना चाहिये। सबसे उत्तम तो निराहार रहना ही है। दूसरा नंबर स्वल्प परिमाणमें दुग्ध लेनेका है। तीसरे नंबरमें सूर्यकी किरणोंसे पके हुए फलोंका है। हलुआ, पूरी, पेड़े आदि फलाहारकी वर्तमान प्रणाली तो चौथी श्रेणीकी है, न करनेसे यह भी अच्छी ही है। कौए, कुत्ते, गाय आदिको भी वही वस्तु देनी चाहिये जो स्वयं खाये।

१५. प्र०—दूसरोंके यहाँ निमन्त्रणमें जानेपर वलिवैश्वदेव नहीं कर सकते। ऐसे अवसरोंपर क्या करना चाहिये?

उ०—ऐसे अवसरोंपर मानसिक वलिवैश्वदेव कर लेना चाहिये।

१६. प्र०—'होइ है सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥' यह बात सिर्फ प्रारब्ध-भोगमें ही लागू है, अथवा परमार्थ-पथकी उन्नति और अवनतिमें भी? इसका असली भाव क्या है?

उ०—यह बात मुख्यरूपसे प्रारब्ध-भोगमें ही लागू है। परमार्थ-पथकी उन्नति होती है साधकके उत्साह, लगन और साधन-सम्बन्धी तत्परतासे तथा उसके अहंकार, आसक्ति, आलस्य, प्रमाद आदिसे अवनति होती है। इसका असली भाव यह समझना चाहिये कि जो कुछ सुख-दुःख मिला, अथवा आगे मिलेगा, उसके सम्बन्धमे सोच-विचार न करके उसे भगवान्‌के विधान और प्रारब्धपर छोड़ दे तथा वर्तमान कालमें भगवान्‌के शरण होकर अपनेको अवनतिसे बचाने और उन्नतिके पथपर ले जानेके लिये भरपूर चेष्टा करे।

१७. प्र०—सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये साधकको क्या करना या करते रहना चाहिये ?

उ०—साधकको चाहिये कि सदाचारका पालन करते हुए नित्य आर्तभावसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना करे कि आप मुझे शीघ्र संत सद्गुरुसे मिलाइये । स्मरण रहे कि सच्ची और उचित प्रार्थना कभी निष्फल नहीं होती । प्रार्थीके भावानुसार कुछ विलम्ब अवश्य हो सकता है ।

१८. प्र०—वास्तवमें जप और ध्यान किसे कहना चाहिये ?

उ०—वास्तवमे सच्चा जप और ध्यान वही है, जो श्रद्धा और प्रेमसे हो । श्रद्धा और प्रेमके विना जप और ध्यान साधारण फलदायक हैं ।

१९. प्र०—साधक दूसरोंकी उन्नतिके लिये चेष्टा करे या नहीं ? होम करते हाथ जलनेकी नौवत तो नहीं आती ?

उ०—इसमें होम करते हाथ जलनेकी नौवत नहीं आती । साधक जिस साधनासे अपना परम कल्याण समझता है वह साधना दूसरे भी करें और उसके द्वारा लाभ उठावें, ऐसी इच्छा और चेष्टा उसकी होनी चाहिये । उसके मनमें ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि यदि दूसरोंका कल्याण-साधन करनेमें मेरी हानि भी हो जाय तो कोई परवा नहीं । वास्तवमें तो दूसरेका भला चाहनेवालेका पतन हो ही नहीं सकता । गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥' (६।४०)'प्यारे अर्जुन ! कल्याणके किसी भी साधक-की कभी किञ्चिन्मात्र भी दुर्गति नही हो सकती ।' इसलिये अपने कल्याणके साथ-साथ दूसरोंके कल्याणकी भी चेष्टा करनी चाहिये ।

२०. प्र०—साधकको अपने ही सुधारमे लगे रहना चाहिये, क्या यह ठीक है ?

उ०—यह ठीक है कि साधकको अपनी उन्नतिमे तो निरन्तर तत्पर रहना ही चाहिये, दूसरोंके हितका भी ध्यान रखना चाहिये । दूसरोंके कल्याणकी चेष्टा करनेपर कही उसके चित्तमें इस बातका अहंकार न हो जाय कि मैंने अमुकका हित कर दिया । इसलिये साधक दूसरोंका हित तो करे अवश्य, परन्तु दूसरोंके सुधारके साथ-साथ अपने सुधारपर निरन्तर दृष्टि रक्खे । जो अपना सुधार नही करता, भला, वह दूसरोंका सुधार कब कर सकता है ।

२१. प्र०—कभी-कभी मेरे इष्टदेवके चित्रसे अधिक सुन्दर चित्र जब मिलते हैं, तब चित्त उनके लिये ललच जाता है । ऐसी स्थितिमे क्या करना चाहिये ? नये चित्रके अनुसार ध्यान करना चाहिये अथवा पुरानेका ही ? ऐसी अवस्थाका यथार्थ मर्म क्या है ?

उ०—जिस समय आपके पासवाले चित्रसे अधिक सुन्दर चित्र आपके पास आता है, उस समय आपको भगवान्‌की विशेष कृपाका अनुभव करना चाहिये । भगवान्‌ने आपपर कृपा करके एक और भी नयनमनोहारी झॉकी आपके सामने प्रकट कर दी । आप उसी रूपमे अपने इष्टदेवका ध्यान कीजिये और उनकी विभिन्न लीलाओंको देखिये । केवल इतना ही नहीं, यदि श्रीकृष्णका ध्यान करते समय श्रीरामका, अथवा श्रीरामका ध्यान करते समय श्रीविष्णुका श्रीविग्रह आपके ध्यानमे प्रकट हो जाय तो भी उसे अपने भगवान्‌की विशेष कृपा समझकर

प्रेमसे पूजा कीजिये और आनन्दसे गद्गद हो जाइये । सब अपने इष्टदेवके ही तो रूप हैं । उनमें भेद-भाव करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

२२. प्र०—परब्रह्म परमात्मामें द्वैत और अद्वैतके भेदसे निर्गुण-निराकार-साकार और सगुण-निराकार-साकारके चार-चार प्रकार हो जाते हैं । उनका यथार्थ मर्म स्पष्ट कीजिये ।

उ०—आपने अपने प्रश्नमें जो चार-चार प्रकारके भेदोंका उल्लेख किया है, वह किस प्रसङ्गसे लिया है ? वहाँ वह जिस भावसे लिखा गया हो, उसको वहींसे समझना चाहिये । वास्तवमें निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार—सब-के-सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं । एक ही लीलामय भगवान् लीलाके लिये विभिन्न साधकोंके सामने भिन्न-भिन्न रूपसे प्रकट होते हैं, उनके सम्बन्धमें इतना जानना ही पर्याप्त है कि वे सब भगवान्‌के ही रूप हैं ।

२३. प्र०—एक बार नखसे शिखतक ध्यान कर लेनेके बाद बार-बार वही दोहराना चाहिये या और कुछ करना चाहिये ।

उ०—नियत समयतक ध्यानके लिये बैठनेपर एक बार तो पूरे नख-शिखका चिन्तन कर लेना चाहिये । रुचि और प्रेम हो तो बार-बार उसे दोहराना चाहिये । शेषमें रुचिके अनुसार मुखारविन्द या चरणारविन्द किसी एकपर मनको स्थिर कर देना चाहिये । ध्यान ठीक-ठीक न लगे तो अपने इष्टदेवके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, चरित्र आदिका स्मरण और उनकी कृपा, प्रेमका अनुभव करना चाहिये । उनकी विभिन्न लीलाओंका ... भी कर सकते हैं और समय, रुचि तथा प्रेरणाके अनुसार

उनकी मानसिक सेवा भी कर सकते हैं। प्रार्थना और मानस-पूजाके लिये भी यही उपयुक्त अवसर है।

२४. प्र०—मेरा मन स्वाध्यायमें विशेष लगता है और जपमें कम। मुझे नामजप करना चाहिये अथवा स्वाध्याय? उत्तम कौन है?

उ०—जप और स्वाध्याय दोनों ही उत्तम हैं। जैसे शरीर-पोषणके लिये अन्न और जल दोनोंकी आवश्यकता है, वैसे ही पारमार्थिक उन्नतिके लिये जप और स्वाध्यायकी है। स्वाध्यायसे जपमें मन लगता है और जपसे स्वाध्यायकी धारणा होती है। दोनों एक-दूसरेके विरोधी नहीं हैं, सहायक हैं। इसलिये दोनों ही करने चाहिये। जिसमें मन न लगे, उसमें लगाया जाय।

२५. प्र०—माया और प्रकृति क्या है? उनमें कितना अन्तर है? भक्त और ज्ञानीकी दृष्टिसे इनके स्वरूप क्या हैं?

उ०—वेदान्ती लोग माया और प्रकृतिको एक ही मानते हैं और उसीके द्वारा जिज्ञासुको सृष्टिकी व्यवस्था समझाते हैं। वे मायाका स्वरूप काल्पनिक मानते हैं। भक्तकी दृष्टिमें प्रकृति सत्य है। वही सृष्टिका उपादान कारण है। उसमें फँसा देनेवाले अंशको वे माया मानते हैं। असलमें भक्तकी दृष्टि तो भगवान्‌पर ही रहती है, वह माया और प्रकृतिको क्यों देखने लगा?

२६. प्र०—शुद्ध साक्षी किसे कहते हैं?

उ०—सम्पूर्ण दृश्यमान जगत्‌के भाव और अभावको, सृष्टि और प्रलयको, प्रतीति और बाधको जो जानता है, किसी भी कर्म अथवा अकर्मका कभी भी कर्ता, भोक्ता नहीं बनता और जो सर्वथा विकाररहित है, वह 'तत्' और 'त्वम्' पदका लक्ष्य कूटस्थ आत्मा ही साक्षी है।

२७. प्र०—प्रपञ्च क्या है ? उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति कैसे हो ?

उ०—जो कुछ भाव अथवा अभावके रूपमे दृश्यमान जगत् है, उसको प्रपञ्च कहते है। उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है ज्ञानमार्गद्वारा ब्रह्मका तत्त्व जाननेसे अथवा भक्तिके द्वारा भगवान्‌की कृपा प्राप्त करके भगवान्‌के स्वरूपका साक्षात्कार हो जानेपर। तात्पर्य यह है कि परमात्माकी प्राप्तिसे ही प्रपञ्चकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है।

२८. प्र०—क्या भक्तोपर भी प्रारब्धका प्रभाव रहता है ?

उ०—भक्तोंके भी शरीरका स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य, धनका लाभ और विनाश आदि प्रारब्धके अनुसार होते हैं। परन्तु वे प्रारब्धके अनुसार होनेवाली घटनाओंसे प्रभावित नही होते। उनकी दृष्टि सर्वदा भगवान्‌पर ही लगी रहती है, वे सब घटनाओंमे उनकी लीला ही देखते रहते हैं, इसलिये वे प्रारब्धको हटानेकी इच्छा भी नही करते। साधारण पुरुषोंकी अपेक्षा यही उनकी विलक्षणता है।

२९. प्र०—यदि नाम-जपके स्थानमे ध्यान ही किया जाय तो कैसा ? नामजप तो छूट जायगा न ?

उ०—नाम-जप ध्यानका विरोधी नही है। इसलिये ध्यानके समय भी नाम-जप करना चाहिये। उस समय न हो सके तो ध्यान टूटनेपर करना चाहिये। यदि ध्यान कभी टूटे ही नही तो फिर बात ही क्या है ? तात्पर्य यह है कि जबतक व्यवहार है, तबतक नाम-जप नहीं छोड़ना चाहिये।

३०. प्र०—मैं शामके समय अपने मनको वृन्दावनमे ले

जाकर सखियोंके साथ भगवान्के नौका-विहारका, फिर मखमली फर्शपर आनेका, सेवा-कुंजमें विराजनेका, युगल सरकारकी एकताका और फिर युगल सरकारका ध्यान-सेवन करता हूँ। तदनन्तर इष्टमन्त्रका जप करता हूँ। इसमे कोई त्रुटि हो तो बतलायें।

उ०—आपकी इस ध्यान-प्रणालीमे कोई त्रुटि नही मालूम होती। आप खूब प्रेमसे अपने इष्टदेवके ध्यान और जपको और भी बढ़ायें।

आपके प्रश्नोंके उत्तर संक्षेपमे ही देनेका प्रयास किया गया है। सुविधाके लिये आपके भावोंकी रक्षा करते हुए प्रश्नों-की भाषा कुछ सुधार ली गयी है। आप उत्तरोंको ठीक-ठीक हृदयङ्गम कर सकें, इसलिये प्रश्न भी साथ-साथ दे दिये गये है। आपके चौथे प्रश्नको द्वितीय प्रश्नमें ही अन्तर्भूत कर दिया गया है।

शेष भगवत्कृपा।

[२४]

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। समाचार जाने। आपकी शङ्काओका समाधान प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार किया जाता है।

(१) जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बलिवैश्वदेव करते हैं और देवता, ऋषि, पितर आदिके लिये पॉच ग्रास निकालते और अग्निमे आहुति देते हैं, वैसे शूद्र भी कर सकते है। अन्तर केवल इतना ही है कि यज्ञोपवीतधारी द्विजातिको तो सब कर्म मन्त्रोच्चारणपूर्वक करने चाहिये, परन्तु शूद्र मन्त्रोंका उच्चारण

नही कर सकता। ऋषि-मुनियों और शास्त्रोंने उनके लिये यह विशेष सुविधा कर दी है कि द्विजातियोंको जो फल मन्त्रोच्चारण-पूर्वक कर्म करनेसे मिलता है, वही उन्हें विना मन्त्रके भी मिल जाता है। मेरे पहलेके लेखोंमें भी संक्षेपसे इस वातका शायद संकेत होगा। यदि लेखोंमें यह वात न भी आयी हो तो समझ लेनी चाहिये।

(२) पितरोंके लिये श्राद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। यह आश्विनके कृष्णपक्षमें तो होता ही है, प्रत्येक महीनेकी मृत्यु-तिथिपर भी होता है। अपने पिता, पितामह आदिकी मृत्यु जिस पक्षकी जिस तिथिको अथवा जिस मासकी जिस तिथिको हुई हो उस दिन श्राद्ध कर सकते है। श्राद्धमें ब्राह्मणोंको ही भोजन करानेका नियम है। यदि श्राद्धके दिन ब्राह्मण-भोजन न करा सकें तो ब्राह्मण-भोजनका फल तो कैसे मिलेगा? पितरोंके उद्धारके लिये जप-पूजन आदि जो कुछ भी किया जाय, विधिपूर्वक होना चाहिये। सकाम कर्म विधिहीन होनेपर फलप्रद नहीं होते। जप तो यदि विधि-पूर्वक न हो सके तो चलते-फिरते, उठते-बैठते कर लेनेमें भी कोई हानि नही है। यदि पितरोंके लिये किसी ब्राह्मणसे महामन्त्रादिका जप करायें तो पहलेसे दक्षिणाकी संख्या नियत न करके अन्तमे श्रद्धानुसार दे दें। यदि ऐसा सम्भव न हो तो दक्षिणा नियत करके भी करा सकते है। इसका भी फल अवश्य मिलता है।

(३) इसमे कोई सन्देह नही कि प्रारब्धका फल अवश्य भोगना ही पड़ता है। ग्रहोंकी स्थितिसे उसकी कुछ सूचना मिल जाती है। उनका प्रभाव भी भगवान्‌के विधानके अनुसार ही पड़ता है। ग्रहोंकी शान्ति और जपसे यदि तीव्र प्रारब्ध न हुआ तो अरिष्टकी निवृत्ति भी हो सकती है, परन्तु यह नही कहा जा

सकता कि कब कौनसे ग्रह जप, शान्तिकर्म आदिसे शान्त हो जायँगे और कब नहीं होंगे। ज्ञानीको प्रारब्ध क्यों भोगना पड़ता है, यह एक दूसरा प्रश्न है। ज्ञानीके शरीरपर प्रारब्धका प्रभाव पड़ता है, परन्तु उससे ज्ञानीको सुख अथवा दुःखरूप विकार नही होता। जैसे साधारण पुरुष शरीरमें रोग होनेपर व्याकुल हो जाते है, वैसी व्याकुलता ज्ञानीमें नही होती। वह तो शरीर और समस्त दृश्यमान जगत्‌को प्रतीतिमात्र देखता है। उसके लिये प्रारब्ध और उसका फल प्रतीतिमात्र है। इसलिये वह न उन्हें चाहता है और न हटानेकी ही इच्छा करता है, इसीसे उसके शरीरपर प्रारब्धका प्रभाव पड़ता है। अज्ञानी पुरुष प्रारब्धके फल सुखसे राग करता है और दुःखसे द्वेष। इसीसे वह दुःखको हटानेकी चेष्टा करता है। यदि प्रारब्ध शिथिल हुआ तब तो उसकी चेष्टा सफल हो जाती है, अन्यथा चेष्टा करनेपर भी प्रारब्धका फल भोगना ही पड़ता है। आशा है, इतनेसे आपकी शङ्काका समाधान हो जायगा।

(४) हम वर्णव्यवस्थाको जन्म और कर्म दोनोंसे मानते है। जो दोनों प्रकार ब्राह्मण है, वह श्रेष्ठ ब्राह्मण है। जो जन्मसे ब्राह्मण है, परन्तु कर्मसे क्षत्रिय—उसको क्षत्रिय-ब्राह्मण समझना चाहिये। जो कर्मसे वैश्य है, उसे वैश्य-ब्राह्मण। धर्मशास्त्रमे देव-ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-ब्राह्मण और राक्षस-ब्राह्मणतकका वर्णन है। अन्य वर्णमे उत्पन्न होकर अन्य वर्णका कर्म करनेसे कर्मसंकर हो जाता है। शुद्ध वर्ण तो वही है, जो जन्म और कर्म दोनोसे ही शुद्ध है। आचरण ब्राह्मणके सदृश होनेपर भी जो जन्मसे ब्राह्मण नहीं है तो वह ब्राह्मण नहीं हो सकता।

यदि पहले कोई दबावके कारण क्षत्रियसे मुसलमान हो

गया हो और अब वह अपनेको क्षत्रिय मानकर क्षत्रियोचित कर्म करता है, तो किसीको कोई अधिकार नहीं कि वह उसे वैसा करनेसे रोके। उसकी मान्यतापर किसीका क्या अधिकार हो सकता है ? इतनी बात अवश्य है कि जो लोग उसे अपनी जातिमें सम्मिलित नहीं करते, उनका वैसा करना भी अनुचित नहीं है। क्या पता कि वह पुरुष अपनी मान्यतापर दृढ़ रहेगा या नहीं। ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं। जब लोग अपनेको हिंदू मानकर शुद्ध हुए--शादी, विवाह की, बच्चे पैदा किये और अन्तमें सबको लेकर फिर विधर्मी बन गये। इसलिये ऐसे लोगोंको जो जातिमें सम्मिलित नहीं करते, वे भी दोषी नहीं है। उनका वह काम भी एक प्रकारसे ठीक ही है।

(५) ऋतुकालमें चौथे दिन स्त्री-सहवासकी जो बात कही गयी है, वह स्त्रीकी अत्यन्त तीव्र इच्छा होनेपर है। वैसे छठे दिनका ही उत्तम समझना चाहिये। शास्त्रमें ऋतुकालके सोलह दिन गर्भाधानके योग्य बतलाये हैं। उनमें विषम रात्रियोंमें गर्भस्थिति होनेसे कन्या होती है और सम रात्रियोंमें होनेसे पुत्र। इस प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि सोलह रात्रियोंमेंसे अन्तिम रात्रियाँ ही श्रेष्ठ है। एकादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यग्रहण आदिका भी निषेध है। इन सबका तात्पर्य यह है कि स्त्री-सहवास कम-से-कम और नियमितरूपमें ही होना चाहिये।

(६) इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान्‌से किसी भी बातकी कामना नहीं करनी चाहिये। बच्चा अपने माता-पितासे अपने अभावकी पूर्ति चाहता है अवश्य, परन्तु जो नहीं चाहता, उसके अभावपर माता-पिता अधिक ध्यान देते हैं। इसलिये सबसे श्रेष्ठ यही है कि भगवान्‌से कुछ भी माँगा न जाय।

भजनके लिये भी रोगनिवृत्तिकी प्रार्थना पहले नंबरकी बात नहीं है। उचित तो यह है कि भगवान्‌के विधानमें संतुष्ट रहकर रोग-शोककी अवस्थाओंमें भी उनकी कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। उन्होंने जब रोग दिया है, तब कुछ-न-कुछ सोच-समझकर ही तो दिया होगा। फिर उनके ज्ञान, कृपा और न्याय-शीलताको स्वीकार न करके उनकी देनको लौटाया क्यों जाय? परन्तु यदि ऐसी ऊँची मानसिक स्थिति न हो तो भजनके लिये आरोग्यकी प्रार्थना करना बुरा नहीं है।

(७) मुख्य बात तो यह है कि यदि राजा कोई अनुचित और अन्यायपूर्ण काम करनेको कहता है, तो उसे स्वीकार ही नहीं करना चाहिये। अपने स्वार्थके लिये किसी भी अन्यायपूर्ण कार्यको कर्तव्यके अंदर स्थान नहीं देना चाहिये। कोई नौकरी सर्वथा प्रारब्धाधीन नहीं होती। लाभ-हानि तथा सुख-दुःखकी प्राप्ति प्रारब्धके अनुसार होती है, और वह किसी-न-किसी निमित्तसे होती है। इसके लिये प्रारब्धको दोष न देकर उसपर और विश्वास करना चाहिये तथा जो कुछ लाभ-हानि, सुख-दुःख प्रारब्धमें बदा होगा वह तो मिलेगा ही, ऐसा निश्चय करके अनुचित कर्मसे अलग हो जाना चाहिये। 'यथा राजा तथा प्रजा' बननेकी नीति तो आत्मबलके अभावकी—कमजोरीकी बात है। इसको औचित्यका रूप कभी नहीं देना चाहिये।

(८) पति-पत्नीका एक शय्यापर शयन करना शास्त्रविरुद्ध नहीं है। यदि ऐसा करना शास्त्रविरुद्ध हो तो स्त्रीसहवास ही कैसे बन सकता है, किन्तु संयमकी दृष्टिसे प्रतिदिन ऐसा नहीं करना चाहिये। कभी-कभी कुछ समयके लिये ऐसा करनेमें

कोई आपत्ति नहीं है। स्त्रीको अप्रसन्न नहीं करना चाहिये, परन्तु जहाँतक हो दृढताके साथ अधिक-से-अधिक संयमका पालन भी करना चाहिये।

(९) जो कर्मचारी राजाका काम ईमानदारीके साथ करता है, और प्रजाको भी प्रसन्न रखता है, वह अपना कर्तव्य-पालन तो करता है, परन्तु यदि वह प्रजासे किसी प्रकारका इनाम लेता है, तो उसे खुले-चौड़ेमें सबके सामने लेना चाहिये। किसीसे भी छिपाकर लेना घूसखोरी ही है। इसे नेक कमाई नहीं कहा जा सकता।

(१०) *चित्त-निरोधके लिये जिस सुषुम्ना नाड़ीका वर्णन* किया गया है, वह वैद्योंकी जानकारीमें आनेवाली सुषुम्ना नाड़ीसे सम्बन्ध तो अवश्य रखती है, परन्तु है उससे भिन्न। वह हृदयसे लेकर मस्तकपर्यन्त एक ज्योतिर्मय सूत्रके रूपमें है और उसमें परमात्माका ध्यान करनेसे बड़े आनन्दका अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त एक सुषुम्ना-स्वर भी है। जब इड़ा और पिंगला बायें और दायें दोनों नासिका-छिद्रोंसे समानरूपसे श्वास-प्रश्वास चलने लगता है, तब उसे सुषुम्ना-स्वर कहते हैं। ब्राह्म-मुहूर्त और सन्ध्याके समय कभी ऐसा स्वाभाविक ही हो जाता है। यह स्वर चलनेपर ध्यानमें चित्त बहुत जल्दी लगता है।

आपके प्रश्न स्वाभाविक और कामके हैं। इसमें कोई अपराधकी बात नहीं है। उत्तर आपके प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार अलग-अलग दिये गये हैं। उत्तरके लिये टिकट भेजनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

[२५]

प्रेमसहित राम-राम। आपका साधन किस तरह चलता है? काम, क्रोध, लोभ, मोहका वेग कम होकर श्रीपरमात्मादेवमें जल्दी अनन्य प्रेम होना चाहिये। आपको हर समय विचारते रहना चाहिये कि जल्दी कल्याण किस तरह हो। यदि ऐसा मौका भी विना भगवत्प्राप्तिके चला जायगा तो फिर ऐसी तजवीज बैठनी बहुत मुश्किल है। आपने अपने उद्धारकी चेष्टाके लिये आफिसका काम छोड़ा था, किन्तु अभीतक आपका ऐसा तेज साधन नहीं हुआ, जिसके बलसे आपको जल्दी भगवत्प्राप्ति हो जाय। आपका साधन ढीला तो होना ही नहीं चाहिये, बल्कि दिन-पर-दिन अधिक तेज होना चाहिये। आपको किस बातकी जरूरत है? आपका साधन तेज होनेमें किसलिये रुकावट हो रही है? भगवत्प्राप्तिके लिये आपकी उत्कण्ठा जोरसे क्यों नहीं होती? यदि इसी अवस्थामें प्राण चले जायँ तो कितनी हानि है? प्राण चले जानेके बाद आपका क्या उपाय रह जायगा? आपको इन बातोंपर विचार करना चाहिये और बहुत जल्दी कल्याणका उपाय कर लेना चाहिये। अभी नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे? दिन तो बीते जा रहे हैं। गये हुए दिन वापस नहीं आ सकते।

[२६]

प्रेमसहित राम-राम वंचना। आपने लिखा कि आपकी मायाको आप ही जानें, सो इस तरह नहीं लिखना चाहिये।

आपने पूछा कि श्रीसच्चिदानन्दघन भगवान्का ध्यान करते हुए श्रीसच्चिदानन्दमय ही हो जायँ; शरीर तथा संसारका कुछ भी ज्ञान न रहे—ऐसा ध्यान कब होगा, सो ठीक है। जब श्रीपरमात्मादेवके नामका जप करते-करते रोमाञ्च और अश्रुपात होने लग जायँगे, भगवान्में पूर्ण प्रेम हो जायगा, उस दिन आपके लिखे मुताबिक श्रीपरमात्मादेवका ध्यान होना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। इस प्रकारके ध्यान रहनेका उपाय पूछा सो सत्सङ्ग और भजनकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये तथा शास्त्रोंका विचार भी करना चाहिये। हो सके तो श्रीगीताजी भाव और अर्थसहित कण्ठस्थ कर लेनी चाहिये। और काम करते समय भी भगवान्के प्रेममें मग्न होते हुए उनके नामका जप और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही काम करनेका अभ्यास डालना चाहिये। इस भाँति अभ्यास तेज होनेपर ध्यान अटल हो सकता है। फिर श्रीसच्चिदानन्दका ध्यान कभी भी छूट सकता नहीं। जबतक ध्यान अच्छी तरह नहीं होता है, तभीतक ध्यानका साधन कुछ कठिन मालूम देता है।

आपने लिखा कि बहुत बार ध्यानकी बातें सुनी जाती हैं, किन्तु बड़े पश्चात्तापकी बात है कि अभीतक ऐसा ध्यान हुआ नहीं, सो ठीक है। अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास करनेसे हो सकता है। ध्यानकी बातें सुननेके समय एकाग्रचित्त होकर सुनना चाहिये और उसके बाद ध्यानमें मग्न रहते हुए ही मार्गपर चलना चाहिये। चाहे जो कुछ हो, ध्यान नहीं छूटना चाहिये। इस तरहकी स्थिति नित्य अभ्यास करनेसे हो सकती है।

किसी समय थोड़ी चेष्टासे भी ध्यान हो जाता है और

किसी समय अधिक चेष्टा करनेपर भी नहीं होता, सो ठीक ही है। जब वृत्तियाँ सात्त्विक होती हैं तब तो थोड़ी चेष्टासे भी ध्यान हो जाता है, किन्तु जब राजसी होती हैं तब अधिक चेष्टा करनी पड़ती है, और जब तामसी वृत्तियाँ होती हैं उस समय तो भगवान्‌का ध्यान होना ही मुश्किल है। इसलिये वृत्तियोंको निरन्तर सात्त्विक रखनेके लिये यज्ञ, दान, तप आदि सात्त्विक कर्म तथा पूजा-पाठ, भजन-सत्सङ्ग आदि करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उत्तम कामसे वृत्तियाँ शीघ्र ही सात्त्विक हो सकती हैं। इसके सिवा इसका और कोई उपाय है नहीं।

जपकी चेष्टा होती लिखी, सो ठीक है। किसी समय आनन्दमयका ध्यान बहुत उत्तम होता है, सो वह भजन-सत्सङ्गका ही प्रताप है। आपने लिखा कि मेरे आचरण बहुत खराब हैं, किन्तु भगवान् पतितपावन हैं, इसीसे धीरज है, सो आनन्दकी बात है। पत्रमें मेरी बड़ाई नहीं लिखनी चाहिये, आपको इसके लिये पहले भी मनाही की थी।

[२७]

××× तुम्हारे अब ऐसा क्या काम है, जिसके कारण तुम भगवत्प्राप्तिके लिये कटिबद्ध होकर नहीं लगते हो? भाई! यदि इस समय शरीर छूट जाय तो तुम विचार करो। तुम्हारे ऐसा कौन-सा साधन बन गया है, जिसके कारण तुम्हारी चेष्टा ढीली है। तुम किसके भरोसे निश्चिन्त-से हो रहे हो? यदि कहो कि भरोसा तो श्रीपरमात्मादेवका ही है, सो भाई! यह तुम्हारी समझकी भूल है। तुमने श्रीपरमात्मादेवकी ब

तो कुछ भी सुनी नहीं, तब
कैसे काम चल सकता है ?
भाई ! तुमने मनुष्यका शरी
लोग कहते हैं, ये इनके मित्र
भगवान्‌के भजनमें बाधा देनेव
हो तो फिर मित्रकी बात तो
लिख दिया कि श्रीगीताजी पर
श्लोक अर्थसहित कण्ठस्थ कर
महीनेमें पूरी गीता अर्थसहि
लिया जाय तो क्या तुम गीत
परन्तु हो कैसे, इस तुच्छ ह
भाई ! तुममें इतनी कायरता
शोभा नहीं देती । तुमने किसी
ली है ? साधनके लिये तुम्हें
होती है ? तथा सत्सङ्गमें पहले
क्यों नहीं होता ? सत्सङ्गका प्र
तो बीता जा रहा है । जल्दी चे

[२८]

की बातें सुनः
अनुमान की जाती है । किन्तु
तेज समझा जाता है, परन्तु अ
समय हो गया । समय तो बीत
फिर आता नहीं । इसलिं

से-ऊँचे साधनके परायण हो जाना चाहिये, एक पलक भी नीचे साधनमें नहीं बिताना चाहिये। ·· के अनुसार साधन होना चाहिये। सम्पूर्ण बल साधनपर लगा देना चाहिये। ध्यानमें ऐसा मस्त हो जाना चाहिये कि भले ही कोई शरीरका नाश कर दे, पर कुछ भी मालूम न हो। श्रीसच्चिदानन्दघनके स्वरूपमें ऐसी मग्नता होनी चाहिये कि फिर इस शरीरकी कुछ भी सुध-बुध न रहे। सारे संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर और अनित्य समझकर उस नित्य बोधस्वरूप परमानन्दमें मग्न हो रहना चाहिये

[२९]

आप किसलिये कटिबद्ध होकर साधनमे नहीं लग रहे है ? इस शरीरसे उत्तम लाभ न लेकर मिथ्या सांसारिक भोगोंके तुच्छ आनन्दमें किसलिये अपने अमूल्य जन्मको धूलमें मिला रहे हैं ? आपका शरीर भी आपके साथ नहीं जायगा, फिर और चीजें तो जा ही कैसे सकती हैं ? उसके बाद आपके ये रुपये किस काम आवेंगे ? एक भगवान्‌के सिवा आपकी और कोई भी सहायता करेगा नहीं। यदि आप तुच्छ सांसारिक आराममें फँसकर अपने पारलौकिक आनन्दको धूलमें मिला देंगे तो पीछे बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अब आपको चेतकर चलना चाहिये। ऐसा समय पुनः मिलना बहुत ही कठिन है। आप उस परम आनन्दके मर्मको नही जानते, नही तो इस शरीरके तुच्छ भोगोंमें कभी नहीं रमते।

तो कुछ भी सुनी नहीं, तब फिर यह कहनेमात्रके भरोसेमे कैसे काम चल सकता है ? तुमको विचार करना चाहिये। भाई ! तुमने मनुष्यका शरीर लेकर क्या किया ? संसारमें लोग कहते हैं, ये इनके मित्र हैं' पर भाई हमारा मित्रपना भगवान्‌के भजनमें बाधा देनेवाला थोड़े ही है ! तुम हमारे मित्र हो तो फिर मित्रकी बात तो माननी चाहिये। तुम्हें कई बार लिख दिया कि श्रीगीताजी पढ़नी चाहिये। भाई ! यदि रोज दो श्लोक अर्थसहित कण्ठस्थ कर लिये जायँ और इस प्रकार बारह महीनेमें पूरी गीता अर्थसहित कण्ठस्थ करनेका नियम कर लिया जाय तो क्या तुम गीताजी याद नहीं कर सकते हो ? परन्तु हो कैसे, इस तुच्छ हृदयकी दुर्बलताको छोड़ो तब न ! भाई ! तुममें इतनी कायरता कहाँसे आयी ? तुम्हें यह कायरता शोभा नहीं देती। तुमने किसलिये इतनी कमजोरी धारण कर ली है ? साधनके लिये तुम्हें अपने मनमें उत्तेजना क्यों नहीं होती है ? तथा सत्सङ्गमें पहलेसे अधिक प्रेम होना चाहिये, सो क्यों नहीं होता ? सत्सङ्गका प्रभाव फिर कब जानोगे ? समय तो बीता जा रहा है। जल्दी चेतना चाहिये।

[२८]

की बातें सुननेसे उनकी बहुत ऊँची कोटि अनुमान की जाती है। किन्तु से भी आपका साधन तेज समझा जाता है, परन्तु अब ढीला नहीं होना चाहिये। बहुत समय हो गया। समय तो बीतता ही जा रहा है। गया हुआ समय फिर आता नहीं। इसलिये अब तो कटिबद्ध होकर ऊँचे-

से-ऊँचे साधनके परायण हो जाना चाहिये, एक पलक भी नीचे साधनमें नहीं विताना चाहिये । ·· के अनुसार साधन होना चाहिये । सम्पूर्ण वल साधनपर लगा देना चाहिये । ध्यानमें ऐसा मस्त हो जाना चाहिये कि भले ही कोई शरीरका नाश कर दे, पर कुछ भी मालूम न हो । श्रीसच्चिदानन्दघनके स्वरूपमें ऐसी मग्नता होनी चाहिये कि फिर इस शरीरकी कुछ भी सुध-बुध न रहे । सारे संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर और अनित्य समझकर उस नित्य बोधस्वरूप परमानन्दमें मग्न हो रहना चाहिये

[२९]

आप किसलिये कटिबद्ध होकर साधनमें नहीं लग रहे हैं ? इस शरीरसे उत्तम लाभ न लेकर मिथ्या सांसारिक भोगोंके तुच्छ आनन्दमें किसलिये अपने अमूल्य जन्मको धूलमें मिला रहे हैं ? आपका शरीर भी आपके साथ नहीं जायगा, फिर और चीजें तो जा ही कैसे सकती हैं ? उसके बाद आपके ये रुपये किस काम आवेंगे ? एक भगवान्‌के सिवा आपकी और कोई भी सहायता करेगा नहीं । यदि आप तुच्छ सांसारिक आराममें फँसकर अपने पारलौकिक आनन्दको धूलमें मिला देंगे तो पीछे बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा । अब आपको चेतकर चलना चाहिये । ऐसा समय पुनः मिलना बहुत ही कठिन है । आप उस परम आनन्दके मर्मको नहीं जानते, नहीं तो इस शरीरके तुच्छ भोगोंमें कभी नहीं रमते ।

[३०]

संसार और शरीरको नाशवान् देखनेसे भगवान् बुखारमें अधिक याद रह सकते हैं। भगवान्‌के साथ प्रेम हुए बिना बहुत ही दुर्गति हुआ करती है—इस तरह समझकर भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। नहीं तो बहुत ही मुश्किल है। शरीर बीत जायगा तब वह तुम्हारे किस काम आवेगा। शरीर तो जरूर नाश होगा ही। इसको बचा रखनेका कोई उपाय नहीं है। इसलिये जबतक यह मिट्टीमें नहीं मिल जाता, तबतक इससे जो कुछ लाभ लेना हो सो तुरंत ले लेना चाहिये। इस प्रकार विचार करनेसे भजन अधिक हो सकता है। जो कुछ लाभ इस शरीर-से उठाना हो, वह प्राण निकले उससे पहले ही उठा लेना चाहिये। यह शरीर तो मिट्टी ही है, अतः तुरंत मिट्टीमें मिलनेवाला है। जल्दी चेष्टा कर लेंगे तो काम बन जायगा, नहीं तो मुश्किल ही है।

[३१]

आपने इतना समय बिता दिया! लगभग पूरी आयु ही बीत गयी। आपको मनुष्य-शरीर पाकर कुछ विचार करना चाहिये था। पर जो हुआ सो हुआ, अब भी चेतना चाहिये। आप जिस कामके लिये आये थे, उस काममें आपको तत्पर होना चाहिये। अब भी यदि नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे? एक भगवान्‌के सिवा कोई भी आपका नहीं है। शरीर भी आपका नहीं है। संसारमें मनुष्य-शरीर पाकर भी यदि भगवद्दर्शन हुए बिना चले जायँगे तो बहुत ही

पश्चात्ताप करना होगा और फिर पश्चात्ताप करनेसे कुछ भी गरज सरेगी नहीं । अतः अब तो इस शरीरको एकदम ही भगवान्के अर्पण कर देना चाहिये । अब तो इस शरीरसे परम लाभ उठाना चाहिये । मनुष्य-जन्मका फल पाना चाहिये । आप किसलिये नहीं ,चेतते है ? एक पलक भी दूसरे काममें क्यों बिताते हैं ? किसलिये फालतू बातोमें समय बिताते है ? श्री-भगवान्के भजन, ध्यान, सत्सङ्गके सिवा जो कुछ भी बात की जाती है, वही फालतू बात है और भगवान्की प्राप्तिके सिवा जो कुछ भी समय बिताया जाता है, वही फालतू समय है । फालतू समय बिताया हुआ आपके किस काम आवेगा ?—ऐसा विचार कर अब तो बहुत ही जल्दी चेतना चाहिये ।

---

[३२]

प्रेमकी बात की चिट्ठीमें लिखी है, उसे देख सकते हैं । और आपको विचारना चाहिये ! मै कौन हूँ ? किसलिये यहाँ आया हूँ ? मुझे क्या करना चाहिये ? और मै क्या कर रहा हूँ ? आपका इस तरह पेट भरनेके लिये ही यहाँ नही आना हुआ है। आपने मनुष्य-जन्म पाकर क्या किया ? जब मृत्यु आकर प्राप्त होगी, उस समय आप क्या करेंगे ? उस समय आपके रुपया, स्त्री, पुत्र तथा कुटुम्बी लोग क्या काम आवेंगे ? शरीर भी तो आपके साथ नही जायगा ! उस समय कोई भी सहायता नही दे सकेगा । कोई भी काम नहीं आवेगा । केवल भगवान्का भजन किया हुआ होगा तो वही काम आवेगा, शेष तो सब जवाब दे देंगे । क्योंकि और किसीकी वहाँ चलती

भी नही है। फिर आप धोखेमें पड़कर किसलिये इस प्रकार सांसारिक पदार्थोंके लिये रात-दिन मारे-मारे फिर रहे हैं? रुपये एकत्र करनेमे इतनी उम्र तो बिता दी है, फिर भी बिता रहे है? आप कुछ विचार नहीं कर रहे है कि ये रुपये मेरी क्या सहायता करेंगे? क्या आपके पास कोई अमरपट्टा है? क्या मृत्यु और यमराजके साथ आपकी दोस्ती है? क्या इन सब चीजोंको किसी भी प्रकार अपने साथ ले जानेका कोई उपाय है? यदि नही तो फिर इस नाशवान् अनित्य संसारके पदार्थोंसे प्रेम हटाकर एकमात्र सच्चे निष्काम प्रेमी प्यारे मनमोहनसे ही निष्कामभावसे अनन्य प्रेम क्यों नहीं कर लेना चाहिये? फिर कब चेतेंगे? जल्दी चेतना चाहिये। बहुत-सा समय चला गया। ढील किसलिये कर रहे हैं? किसके भरोसे निश्चिन्तकी-ज्यों हो रहे है?

[३३]

मुझसे मिलनेकी टान लिखी सो यह तो आपके प्रेमकी बात है। और आजकल भजन कम होता लिखा तथा सांसारिक कामोंमें फँसाव लिखा सो सत्सङ्ग कम हुआ होगा। आपने लिखा कि पीछे पछताते भी है, सो इस तरहके पछतानेसे पूरा काम नही बनेगा। असली पछताना तो उसीका समझा जाता है, जिसको उस कामके लिये फिर दुबारा नहीं पछताना पड़ता। एक कामके लिये अनेक बार पछताये, फिर भी काम न हो और बार-बार पछताना पड़े, तो उसका क्या मूल्य है? परन्तु इस तरहका सुन्दर मौका लग जानेपर भी यदि भगवान्‌के

भजन-ध्यानमे जोरसे न लगकर इसी प्रकार ही संसारमे भटकते रहे तो जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा। इसलिये सारी बात विचारकर ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे आगे पछताना न पड़े। अगर साधन तेज करके जिस कामके लिये आना हुआ है, उसे सिद्ध कर लेंगे तो फिर कभी पश्चात्ताप नही करना पड़ेगा।

आपने लिखा कि आजकल संसारका चिन्तन ही अधिक होता है, भजन नही बनता, अतः मन भगवान्मे कैसे लगे, सो प्रेम होनेसे मन भगवान्में लगता है। प्रेमकी बातें श्री • के पत्रमे लिखी है, उन्हें ध्यानमें लाना चाहिये।

××× यदि इस तरहका प्रेम भगवान्मे हो जाय तो भगवान्के आनेमे बिल्कुल सन्देह नही। क्योंकि श्रीपरमात्मादेव स्वयं सर्वसामर्थ्यवान् और स्वतन्त्र है। इसलिये उनके साथ पूर्ण प्रेम करना चाहिये। ××× भगवान्मे निष्कामभावसे पूर्ण प्रेम करनेके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। उनके साथ प्रेम होनेके बाद आपको कुछ भी नही करना होगा। फिर आपको किसीकी भी गरज नही रहेगी। लोग ही आपकी गरज करेंगे। किन्तु उनके साथ प्रेम नही हुआ तो कुछ भी नही हुआ।

[३४]

××× पहले मैंने आपको सत्सङ्गके समाचार लिखे थे, उनके अनुसार आप साधन करते है या नही? सो लिखना चाहिये। समयको अनमोल समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। समयकी अमूल्यता समझनेके बाद भगवान्के मिलनमें इस

भी नहीं है। फिर आप धोखेमें पड़कर किसलिये इस प्रकार सांसारिक पदार्थोंके लिये रात-दिन मारे-मारे फिर रहे हैं ? रुपये एकत्र करनेमें इतनी उम्र तो बिता दी है, फिर भी बिता रहे हैं ? आप कुछ विचार नहीं कर रहे हैं कि ये रुपये मेरी क्या सहायता करेंगे ? क्या आपके पास कोई अमरपट्टा है ? क्या मृत्यु और यमराजके साथ आपकी दोस्ती है ? क्या इन सब चीजोंको किसी भी प्रकार अपने साथ ले जानेका कोई उपाय है ? यदि नही तो फिर इस नाशवान् अनित्य संसारके पदार्थोंसे प्रेम हटाकर एकमात्र सच्चे निष्काम प्रेमी प्यारे मनमोहनसे ही निष्कामभावसे अनन्य प्रेम क्यों नही कर लेना चाहिये ? फिर कब चेतेंगे ? जल्दी चेतना चाहिये। बहुत-सा समय चला गया। ढील किसलिये कर रहे हैं ? किसके भरोसे निश्चिन्तकी-ज्यों हो रहे है ?

---

[३३]

मुझसे मिलनेकी टान लिखी सो यह तो आपके प्रेमकी बात है। और आजकल भजन कम होता लिखा तथा सांसारिक कामोंमें फँसाव लिखा सो सत्सङ्ग कम हुआ होगा। आपने लिखा कि पीछे पछताते भी है, सो इस तरहके पछतानेसे पूरा काम नही बनेगा। असली पछताना तो उसीका समझा जाता है, जिसको उस कामके लिये फिर दुबारा नहीं पछताना पड़ता। एक कामके लिये अनेक वार पछताये, फिर भी काम न हो और वार-वार पछताना पड़े, तो उसका क्या मूल्य है ? परन्तु इस तरहका सुन्दर मौका लग जानेपर भी यदि भगवान्‌के

भजन-ध्यानमे जोरसे न लगकर इसी प्रकार ही संसारमे भटकते रहे तो जन्म-जन्ममे पछताना पड़ेगा। इसलिये सारी बात विचारकर ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे आगे पछताना न पड़े। अगर साधन तेज करके जिस कामके लिये आना हुआ है, उसे सिद्ध कर लेगे तो फिर कभी पश्चात्ताप नही करना पड़ेगा।

आपने लिखा कि आजकल संसारका चिन्तन ही अधिक होता है, भजन नही बनता, अतः मन भगवान्मे कैसे लगे, सो प्रेम होनेसे मन भगवान्मे लगता है। प्रेमकी बातें श्री .. के पत्रमे लिखी हैं, उन्हे ध्यानमें लाना चाहिये।

××× यदि इस तरहका प्रेम भगवान्मे हो जाय तो भगवान्के आनेमे बिल्कुल सन्देह नही। क्योंकि श्रीपरमात्मादेव स्वयं सर्वसामर्थ्यवान् और स्वतन्त्र हैं। इसलिये उनके साथ पूर्ण प्रेम करना चाहिये। ××× भगवान्में निष्कामभावसे पूर्ण प्रेम करनेके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। उनके साथ प्रेम होनेके बाद आपको कुछ भी नही करना होगा। फिर आपको किसीकी भी गरज नहीं रहेगी। लोग ही आपकी गरज करेंगे। किन्तु उनके साथ प्रेम नही हुआ तो कुछ भी नही हुआ।

[३४]

××× पहले मैंने आपको सत्सङ्गके समाचार लिखे थे, उनके अनुसार आप साधन करते है या नही? सो लिखना चाहिये। समयको अनमोल समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। समयकी अमूल्यता समझनेके बाद भगवान्के मिलनमें इस

तरहकी ढील नहीं हो सकती· इसलिये समयको अनमोल समझना चाहिये। जिस समय आप समयकी अमूल्यता समझ लेंगे, उस समय आपको भगवान्‌के सिवा संसारकी अन्य कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगेगी तथा संसारके ये क्षणभङ्गुर भोग प्रत्यक्ष नाशवान् प्रतीत होने लगेंगे एवं सर्वत्र एक श्रीपरमात्मा देव ही दीखने लग जायँगे। किन्तु समयको अमूल्य समझे बिना कुछ भी नहीं होगा। समयको अनमोल जान लेनेके बाद एक पलक भी व्यर्थ काममे नही बितायी जा सकती। जबतक संसारके तुच्छ भोगोंके लिये समय बिताया जाता है, तबतक समयका कुछ भी प्रभाव नही जाना। आपको विचारना चाहिये कि हम कौन है, किसलिये यह मनुष्य-शरीर हमे मिला है, हमे क्या करना चाहिये और क्या कर रहे है।

---

[३५]

आपने लिखा कि मेरा प्रेम बहुत कम हो गया, सो प्रेम तो कभी कम हो नहीं सकता। यदि देखने [illegible] आये तो भी वास्तवमें कम नहीं समझना चाहिये। [illegible]
और प्रेमका क्षय हो नहीं सकता। [illegible]
पत्रमें लिखा गया है। पहले भी आपका [illegible]
भूलसे अधिक मान लिया था। [illegible]
होता ही [illegible] प्रेम रहा होगा।
चीज है। [illegible] तो आप [illegible]
आदमियोंके [illegible] ही प्रेमका
[illegible] गोपियोंका

कुछ उद्धव और अर्जुनका भी था। जिसने भगवान्‌के प्रेमका मर्म जाना है, वह उस भगवत्प्रेमके लिये एक पलमें आनन्दपूर्वक सर्वस्व त्याग सकता है। सर्वस्व त्याग देनेमें उसे कुछ भी क्लेश नहीं होता, बल्कि आनन्द ही होता है। वह प्रेमीके एक पलके सङ्गके लिये भी प्राणपर्यन्त चेष्टा करता है। प्रेमीके सङ्गके लिये लाख रुपया त्यागना भी कोई बड़ी चीज नहीं। अपने प्रेमीके एक क्षणके सङ्गके लिये चाहे सर्वस्व नाश हो जाय, पर वह अपने प्रेममें किञ्चित् भी कलङ्क नहीं लगने देता और प्रेमीका समाचार सुननेपर आनन्दमें विह्वल हो जाता है तथा प्रेमीका सन्देश सुनानेवालेका उपकार वह कभी नहीं भूलता, जैसे भरतजी हनुमान्‌जीका उपकार नहीं भूलते।* प्रेमीका नाम सुननेसे भी नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगता है, रोमाञ्च हो जाता है और हृदयमें आनन्द नहीं समाता तथा जिसके साथ प्रेम होता है, उसके साथ लज्जा, भय, मान, मोह, सत्कार और सांसारिक वस्तुकी कामनाका बर्ताव कभी नहीं होता।

[३६]

तुमने लिखा कि मेरा ईश्वरमें प्रेम हो जाय—ऐसी बात लिखनी चाहिये, सो ठीक है, जिनका ऐसा प्रेम है, उन लोगोंको धन्यवाद है। ईश्वरमें प्रेम होनेकी बात भी उन्हींको मालूम है, किन्तु फिर भी अपनी समझके अनुसार कुछ लिखा जाता है।

भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करनेसे

* एहि सदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। • • • ॥

तरहकी ढील नहीं हो सकती, इसलिये समयको अनमोल समझना चाहिये। जिस समय आप समयकी अमूल्यता समझ लेंगे, उस समय आपको भगवान्‌के सिवा संसारकी अन्य कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगेगी तथा संसारके ये क्षणभङ्गुर भोग प्रत्यक्ष नाशवान् प्रतीत होने लगेंगे एवं सर्वत्र एक श्रीपरमात्मा देव ही दीखने लग जायँगे। किन्तु समयको अमूल्य समझे विना कुछ भी नहीं होगा। समयको अनमोल जान लेनेके वाद एक पलक भी व्यर्थ काममे नहीं वितायी जा सकती। जवतक संसारके तुच्छ भोगोके लिये समय विताया जाता है, तवतक समयका कुछ भी प्रभाव नहीं जाना। आपको विचारना चाहिये कि हम कौन हैं, किसलिये यह मनुष्य-शरीर हमे मिला है, हमे क्या करना चाहिये और क्या कर रहे हैं।

---

[३५]

आपने लिखा कि मेरा प्रेम वहुत कम हो गया, सो प्रेम तो कभी कम हो नहीं सकता। यदि देखनेमे कम नजर आये तो भी वास्तवमें कम नहीं समझना चाहिये। निष्काम कर्म, उपासना और प्रेमका क्षय हो नही सकता। प्रेमका उपाय के पत्रमें लिखा गया है। पहले भी आपका प्रेम अधिक नही था, आपने भूलसे अधिक मान लिया था। वास्तविक प्रेम तो कभी कम होता ही नही। सकाम प्रेम रहा होगा। प्रेम तो कुछ और ही चीज है। असली प्रेमका विषय तो आप जानते भी नहीं। प्रेमी आदमियोंके साथ प्रेम होनेसे ही प्रेमका मर्म जाना जाता है। श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजके साथ गोपियोंका सच्चा प्रेम था तथा

कुछ उद्धव और अर्जुनका भी था। जिसने भगवान्‌के प्रेमका मर्म जाना है, वह उस भगवत्प्रेमके लिये एक पलमे आनन्दपूर्वक सर्वस्व त्याग सकता है। सर्वस्व त्याग देनेमें उसे कुछ भी क्लेश नहीं होता, वल्कि आनन्द ही होता है। वह प्रेमीके एक पलके सङ्गके लिये भी प्राणपर्यन्त चेष्टा करता है। प्रेमीके सङ्गके लिये लाख रुपया त्यागना भी कोई वड़ी चीज नहीं। अपने प्रेमीके एक क्षणके सङ्गके लिये चाहे सर्वस्व नाश हो जाय, पर वह अपने प्रेममें किञ्चित् भी कलङ्क नही लगने देता और प्रेमीका समाचार सुननेपर आनन्दमे विह्वल हो जाता है तथा प्रेमीका सन्देश सुनानेवालेका उपकार वह कभी नही भूलता, जैसे भरतजी हनुमान्‌जीका उपकार नहीं भूलते।* प्रेमीका नाम सुननेसे भी नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगता है, रोमाञ्च हो जाता है और हृदयमें आनन्द नही समाता तथा जिसके साथ प्रेम होता है, उसके साथ लज्जा, भय, मान, मोह, सत्कार और सांसारिक वस्तुकी कामनाका वर्ताव कभी नहीं होता।

[३६]

तुमने लिखा कि मेरा ईश्वरमें प्रेम हो जाय—ऐसी वात लिखनी चाहिये, सो ठीक है, जिनका ऐसा प्रेम है, उन लोगोंको धन्यवाद है। ईश्वरमें प्रेम होनेकी वात भी उन्हींको मालूम है, किन्तु फिर भी अपनी समझके अनुसार कुछ लिखा जाता है।

भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करनेसे

* एहि सदेस सरिस जग माहीं। करि विचार देखेउँ कछु नाहीं॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। · · · ··॥

भगवान्‌में प्रेम होता है। भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंद्वारा भगवान्‌के गुणानुवाद, प्रभाव तथा मर्मकी गुप्त बातें सुननेसे भगवान्‌में बहुत जल्दी प्रेम हो सकता है। तथा भगवान्‌के आज्ञानुसार निष्कामभावसे भगवान्‌के लिये ही कर्म करनेसे और भगवान्‌से मिलनेकी उत्कण्ठा होनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

ऊपर लिखी बातोंको काममें लाकर भगवान्‌का प्रभाव जान लिया जाय, तब भगवान्‌में श्रद्धा-भक्ति होकर भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं।

× × × समय बीता जा रहा है। जल्दी चेतना चाहिये। तुम्हारा साधन कैसा होता है? भजन, ध्यान, सेवा, सत्सङ्गको सबसे उत्तम समझनेसे बहुत जल्दी भगवान् मिल सकते हैं। जबतक संसारके भोग, शरीर तथा रुपयोंको श्रेष्ठ समझा जाता है, तभीतक भगवान्‌के मिलनेमें ढील होती है, एवं जबतक समयकी अमूल्यता नहीं समझी जाती, तभीतक भगवान्‌के मिलनेमें विलम्ब हो रहा है। जब एकमात्र भगवान्‌को ही श्रेष्ठ समझ लिया जायगा तथा समयकी अमूल्यता समझमें आ जायगी, तब भगवान्‌के मिलनेमें देर नहीं हो सकती।

---

[३७]

उस मनमोहन प्यारेमें शीघ्र ही सबकी अनन्यभक्ति हो जाय—ऐसा उद्देश्य रखकर सत्सङ्गकी चेष्टा होनी चाहिये। निरन्तर भगवान्‌का ध्यान रहते हुए ही ऊपर लिखे अनुसार कोशिश होनी चाहिये। ध्यानकी गाढ़ स्थिति रहनेपर हृदयमें बहुत ऊँचे-ऊँचे भावोंकी बातें उत्पन्न हो सकती हैं। श्रीभगवद्भक्ति-

के प्रचारका काम जल्दी तेज कैसे हो—इस प्रकार विचार रखनेसे श्रीभगवद्भक्तिका प्रचार ज्यादा बढ़ सकता है। इसके समान और कोई भी काम नहीं है। श्रीभगवान्‌ने गीता अध्याय १८ श्लोक ६८-६९ मे यही बात कही है।* इसलिये कटिबद्ध होकर निष्कामभावसे चेष्टा करनी चाहिये, फिर कुछ भी चिन्ता नहीं। समयको अमूल्य समझ लेनेके बाद कञ्चन-मिट्टी सभी समान हो जाते हैं। इसलिये समयको अमूल्य समझनेका विशेष प्रयत्न करना चाहिये। तथा श्रीपरमात्मादेवके सिवा अन्य कुछ भी न रहे—ऐसे ध्यानके आनन्दमें निरन्तर मग्न रहना चाहिये। समय बीता जा रहा है। एक क्षण भी तेज साधनके बिना नहीं बिताना चाहिये एवं स्वप्नमें भी शरीरमें अहंभाव नहीं रहना चाहिये। इस प्रकार लोगोंको कहना चाहिये और कहना चाहिये कि मनुष्य-शरीर बहुत ही कठिनतासे मिलता है, यदि इस मौकेपर भी कल्याण नहीं होगा तो फिर न मालूम क्या दशा होगी—ऐसा समझकर तुरंत भगवान्‌के परायण हो जाना चाहिये।

---

* य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा—इसमे कोई सन्देह नहीं है। और उससे बढकर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढकर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।'

[३८]

आपका ता० २७-३-४१ का पत्र मिला। आप कल्याण-के लेख पढ़ते हैं तथा उनको काममें लानेकी चेष्टा करते हैं, सो बहुत आनन्दकी बात है। आपको कोशिश करनेपर भी सफलता न मिली, इसलिये तीन प्रश्नोंका उत्तर पूछा, सो नीचे लिखा जाता है—

(१) *प्रश्न*—परस्त्रीका तो त्याग है। अपनी स्त्रीके साथ भी ब्रह्मचर्यसे रहनेका बहुत दिल होता है, किन्तु सफलता नहीं मिलती।

उत्तर—स्त्रीके साथ एक शय्यापर नहीं सोना चाहिये। एक कमरेमें भी दोनोंको अलग-अलग सोना चाहिये और विवेक-विचारपूर्वक संयम रखना चाहिये। यदि विवेक-विचारसे न हो सके तो स्त्री-पुरुष दोनोंकी सम्मतिसे नियम करके हठपूर्वक संयम करना चाहिये। स्त्रीसहवाससे बल, वीर्य, तेज, बुद्धि, आयुका नाश तो होता ही है। इसलिये इनके नाशका भय दिखलाकर विवेक-वैराग्यपूर्वक संयम रखना चाहिये।

(२) *प्रश्न*—भजन-ध्यानके समय मन भटकता रहता है। बहुत कोशिश करनेपर भी एकाग्रता नहीं होती। मन तो हजारों कोस चला ही जाता है।

उत्तर—मनको यह भय दिखलाना चाहिये कि मृत्युका कोई पता नहीं, न जाने कब आ जाय। यदि भगवान्‌के चिन्तन बिना संसारका चिन्तन करते हुए मृत्यु हो गयी तो बड़ी बुरी दशा होगी। इसलिये सचेष्ट होकर मनको बार-बार भगवान्‌के चिन्तन-

में लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये गीतातत्त्वाङ्कमें अध्याय ६ श्लोक २५, २६, ३५, ३६ का तथा अध्याय ८ श्लोक ५, ६, ७ का अर्थ देखना चाहिये ।

(३) *प्रश्न*—भजनपर श्रद्धा होनेके बाद कुछ लक्ष्मीकी प्राप्ति जरूर होती है, परन्तु वह ईमानदारीकी नहीं होती । प्रार्थना करता हूँ कि ईमानदारीकी कमाई मिले, किन्तु मिलती है छल-कपटसे ही ।

उत्तर—भजनका फल लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं है, वह तो प्रारब्धपर निर्भर है तथा धनकी प्राप्ति ईमानदारीसे नहीं होती, छल-कपटसे होती है, इसमें आपके प्रारब्ध और ईश्वरपर विश्वासकी कमी है। आत्मबलकी कमीके कारण ही ऐसा होता है। जितना ही प्रारब्ध और ईश्वरपर विश्वास बढ़ेगा, उतना ही आत्मबल बढ़ेगा। अतः आत्मबलकी वृद्धिके लिये प्रारब्ध और ईश्वरपर विश्वास करना चाहिये। प्रारब्धपर विश्वास करना यह है कि प्रारब्ध-के अनुसार जो कुछ मिलना होगा, वह न्याययुक्त चेष्टा करनेसे भी मिल ही जायगा, फिर पाप क्यों करना चाहिये। प्रारब्धसे अधिक तो मिलेगा नहीं। यदि प्रारब्धमें न मिलना होगा तो चेष्टा करनेपर भी नहीं मिलेगा, फिर विश्वासमें ही कमी क्यों आने दी जाय। और ईश्वरपर विश्वास करना यह है कि जब ईश्वर विश्वम्भर है तो अपनेको क्या चिन्ता है। वह सबका पेट भरेगा ही। और पेट भर जाने-पर फिर रुपयोंकी जरूरत ही क्या है। लक्ष्मी मिलकर यदि सकाम भक्तिमें भी कमी आये तो फिर उन रुपयोंसे लाभ ही क्या है ?

[३९]

आप लोगोंको इतने दिन हो गये, पर अभीतक तेज साधन नहीं हुआ। पहलेकी अपेक्षा तो कुछ चेष्टा अधिक दीखती है, परन्तु जितनी चेष्टा होनी चाहिये उतनी नही हुई तथा योग्यताके अनुसार चेष्टा नही हुई। खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ; अब तो बहुत जोरसे चेष्टा करनी चाहिये। अपने आत्मबलको देखना चाहिये और साधन बहुत तेज हो, इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये। मान-अपमानमें, निन्दा-स्तुतिमे, सुख-दुःखमें और मिट्टी-सुवर्णमें समान और राग-द्वेषरहित होकर संसारमें जीवन्मुक्तकी तरह विचरनेके लिये साधन करना चाहिये तथा उत्तम गुण स्वाभाविक ही होने चाहिये। तेज, क्षमा, धृति, शौच, अमानित्व, अदम्भित्व आदि सद्गुणोंकी प्राप्तिके लिये भजन-ध्यान-सत्सङ्गका साधन निष्काम प्रेमभावसे करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। एक सत्-चित्-आनन्द-घनमें मग्न होनेके लिये ही जो भजन-सत्सङ्गका अभ्यास करना है वही निष्काम प्रेमभावसे तेज साधन करना है। शरीर तथा संसारके भोग सब नाशवान् और क्षण-भङ्गुर हैं—ऐसा जानकर उस सच्चे प्रेमीको अपने चित्तसे कभी नहीं भूलना चाहिये। अन्य कार्योंमें भले ही हर्ज हो, शरीरको भी चाहे जितनी तकलीफ हो, संसारके आराम चाहे सब चले जायँ, किन्तु एक भगवान् अवश्य मिलने चाहिये—ऐसा भाव हर समय रखना चाहिये।

[४०]

उधर सत्सङ्गका प्रचार कैसा हो रहा है ? आप लोगोंको कटिबद्ध होकर भगवद्भक्तिका प्रचार करना चाहिये और निष्काम

भावसे लोगोंकी सेवा करनी चाहिये। सब जीवोंकी जो सेवा है, वही नारायणदेवकी सेवा है। श्रीभगवान्‌को हेतुरहित सच्चे प्रेमी समझकर उन मनमोहन श्रीहरिभगवान् आदि नारायणदेवको अपने चित्तसे कभी नहीं भुलाना चाहिये। इस असार संसारसे रवाना होंगे, उस दिन यहाँकी कोई भी वस्तु आपके साथ नहीं जायगी। शरीर भी यहीं रह जायगा। श्रीनारायणदेवका चिन्तन किया हुआ होगा तो वह काम आवेगा। उत्तम कर्म भी साथ जा सकते हैं, इसलिये उत्तम-उत्तम आचरणोंके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। एक श्रीहरिभगवान्‌के सिवा आपका और कोई भी नहीं है। सारा संसार अपने मतलबका है। आप इसके मोहजालमें फँसकर अपने अमूल्य जीवनको किस लिये मिट्टीमें मिला रहे हैं? यदि ऐसे मौकेपर भी नहीं चेतेंगे तो पीछे पछताना पड़ेगा।

[४१]

नित्य बोधस्वरूप आनन्दघनमें निरन्तर विशेष स्थिति रहनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये। सामान्य स्थिति तो रहती ही है, परन्तु बोध और आनन्दकी बहुलता गाढ़ रूपसे निरन्तर रहे—इसीके लिये विशेष चेष्टा करनी है। अब जल्दी ही श्रीपरमात्मादेवको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील हो जाना चाहिये। बहुत समय हो गया है, अब तो विचारना चाहिये। श्रीपरमात्माका वियोग आप लोग सह सकते हैं, तभी वियोग हो रहा है। जिस दिन वियोग सहन नहीं हो सकेगा, उस दिन संयोग होनेमें देर नहीं होगी। जो कुछ विलम्ब होता है, उसमें अपने ही साधनकी त्रुटि समझनी चाहिये। श्रीपरमात्मादेवकी

ओरसे तो एक पलककी भी ढील नहीं है । भगवान् तो सब जगह प्राप्त ही हैं, केवल विश्वासकी त्रुटि है। इसी कारण प्राप्त होते हुए भी अप्राप्त-से लग रहे हैं । श्रीपरमात्मादेव सब जगह प्रत्यक्ष हैं । इसमें कुछ भी सन्देहकी बात नहीं है । ये शास्त्रके ही वचन हैं, पर श्रद्धा होनी चाहिये । जो कुछ भी उपाय करना है, वह इस श्रद्धाके लिये ही करना है ।

[४२]

श्रीभगवान्‌का भरोसा रखना चाहिये । किसी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । गीता अध्याय २ श्लोक ११ * के अर्थका मर्म समझ लेनेके बाद किसी बातकी चिन्ता रह नहीं सकती; क्योंकि चिन्ताके योग्य कोई वस्तु है ही नहीं । आपने लिखा कि कृपा करके ऐसा उपाय लिखना चाहिये, जिससे मेरा भजनमें प्रेम हो जाय, सो ठीक है । यदि लिखनेसे प्रेम होता तो कई बार लिखा हुआ है ही, प्रेम हो जाना चाहिये था । जिनके लिखनेसे, भाषणसे, दर्शनसे और स्पर्शसे भगवान्‌में पूर्ण प्रेम हो जाया करता है, ऐसे पुरुषोंसे मिलनेकी चेष्टा करनी चाहिये । श्रीपरमात्मादेव यदि मुझको ऊपर लिखे अनुसार गुण-

* अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

'हे अर्जुन ! तू न शोक करने योग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है, परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते ।'

प्रभाववाला बना देते तो फिर आपको इतना लिखना ही नहीं पड़ता, किन्तु इस प्रकारका प्रभाव होना बहुत दुर्लभ है। श्रीभगवान्‌के भक्तोंमें भी कोई विरला ही ऐसे प्रभाववाला होता है। श्रीपरमात्मादेवको प्राप्त हुए पुरुषोंमें भी ऐसे प्रभाववाला विरला ही कोई होता है। मैं तो साधारण मनुष्य हूँ। इसलिये मेरी बड़ाईका समाचार नहीं लिखना चाहिये। गीताके उपर्युक्त श्लोकके अर्थका अभ्यास करना चाहिये।

[४३]

साधन तेज हो, इसके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। जैसा स्वभाव जीवन्मुक्त पुरुषोंका होता है, वैसा ही ऊँचे दर्जेका स्वभाव आपको बनाना चाहिये। जो भी कुछ हो, सबमें समभाव रखकर एक श्रीपरमात्मादेवके सिवा अन्य कुछ भी न प्रतीत हो—ऐसी स्थिति प्राप्त करनी चाहिये।

[४४]

साधनमें त्रुटि होनेके कारण आपका प्रेम कम है। जिस प्रकार धन, शरीर और संसारमें प्रेम है, उसी प्रकार भगवान्‌में प्रेम होना चाहिये। आप लोग तो समझते हैं कि संसारमें रुपये ही सबसे बढ़कर हैं, क्योंकि रुपयेसे सब कुछ मिल सकता है। इसीलिये रुपयेमें विशेष प्रेम हो रहा है, किन्तु इस प्रकार समझना बहुत ही भूल है। रुपयेसे श्रीपरमात्मादेव नहीं मिलते। श्रीपरमात्मादेवकी तो बात ही दूर है, भगवान्‌का प्रेमी भक्त भी रुपयेसे नहीं मिलता। प्रेमसे ही प्रेमी भक्त मिल सकते हैं, फिर

भगवान्‌की तो बात ही क्या है ? भगवान्‌के भक्तोंके सङ्गके सामने रुपये कुछ भी नहीं है, परन्तु आप तो दस रुपयोंके लिये भी चार दिनका सत्सङ्ग छोड़ देते हैं। आपने सत्सङ्गका प्रभाव नहीं जाना है, रुपयेको ही बड़ी बात समझ रक्खी है। भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेके बाद तो रुपये मिट्टीके समान लगने लग जाते हैं। कारण, रुपया उसके आगे फिर क्या वस्तु है ? जब त्रिलोकीका मालिक उसका प्रेमी है, तो फिर रुपया क्या चीज है ?

[४५]

भजन-ध्यान होनेका उपाय है—सत्सङ्ग तथा भजन-ध्यानके लिये चेष्टा करना। किन्तु सत्सङ्ग भी प्रेम होनेसे, सच्चिदानन्द-घन भगवान्‌की कृपासे तथा भगवान्‌की कृपा मानकर उनके शरण होकर चेष्टा करनेसे ही हो सकता है। इस काममें पुरुषार्थ ही प्रधान है। भगवान्‌की शरण भी लेनी चाहिये, नहीं तो पुरुषार्थका अभिमान हो सकता है। अपने पुरुषार्थसे भगवान् मिलते हैं—इस तरहका अभिमान भी साधनमें बाधा देनेवाला है, इसके नाशके लिये भगवत्कृपाका आश्रय ही एकमात्र साधन है। साधन तेज नहीं होता तो समझना चाहिये कि भगवत्कृपाके आश्रयमें ही भूल है और वह शरणागत भी कहनेमात्रका ही है। हाँ, न होनेसे तो कहनामात्र भी अच्छा है। वस्तुतः शरण हो जानेके बाद तो मनुष्य जो कुछ भी हो, उसीमें आनन्द मानता है; क्योंकि जो कुछ होता है, सब भगवान्‌की इच्छासे ही होता है। इस तरह मानकर हर समय आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

[४६]

लोभसे ही झूठ बोला जाता है। लोभ ही पापका मूल है। इसलिये लोभका त्याग करना चाहिये। लोभके त्यागके लिये निष्कामभावसे भगवान्‌का भजन-ध्यान करना चाहिये, मृत्युको याद रखना चाहिये एवं शरीर, भोग और संसारके सब पदार्थोंको क्षणभङ्गुर तथा नाशवान् समझना चाहिये। अनित्य ससारके भोगोंके लिये उस नित्य सच्चे प्रेमी भगवान्‌को नहीं भूलना चाहिये। संसारके सारे पदार्थ नाशवान् हैं, कोई भी पदार्थ साथ नही जायगा, एक भगवान् ही साथ जायँगे। इस तरह समझकर भगवान्‌के भजन-ध्यानको भूलना नही चाहिये। भजन-ध्यानसे ही झूठ बोलना छूट सकता है। झूठसे भगवत्प्राप्तिमें बड़ी भारी रुकावट पड़ती है—ऐसा समझ लेनेपर झूठ छूट सकता है।

[४७]

आप जिस कामके लिये आये थे, उसे आपको याद करना चाहिये। मनुष्यका शरीर केवल पेट भरनेके लिये ही नही मिला है। जिस प्रकार भगवान् मिले, सच्चा कल्याण हो—वैसी चेष्टा करनी चाहिये। इससे बढ़कर आपके लायक और कोई भी काम नही है। जबतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई, तबतक कुछ भी नहीं हुआ। भगवान्‌की प्राप्ति होती है—निरन्तर निष्काम प्रेमभावसे, भगवान्‌का भजन-ध्यान करनेसे तथा सत्सङ्ग और सेवा करनेसे। इसलिये अपने शरीरको संसारकी सेवा करनेमें तथा भगवान्‌के भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये। इससे बढ़कर और कोई काम नहीं है।

[४८]

सत्सङ्गमें अधिक मनुष्य नहीं आते सो ठीक है। सब प्रकारसे स्वार्थ और मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी इच्छाको त्याग कर मन, वाणी और शरीरसे सबकी सेवा करनेका भाव रखते हुए प्रयत्न करना चाहिये। स्वार्थ-त्यागके व्यवहारसे सत्सङ्गमें लोग कुछ जुट सकते हैं, किन्तु चेष्टा करनेकी विशेष आवश्यकता है। बहुत जल्दी सब भगवान्‌की भक्तिमें लग जायँ, बहुत जल्दी सबका भगवान्‌में प्रेम हो जाय और बहुत जल्दी सबको लाभ पहुँच जाय—इसके लिये उपाय पूछा सो ठीक है। श्रीपरमात्माके प्रेमी भक्तोंको उधर बुलाना चाहिये और उनका सत्सङ्ग करनेके लिये सब भाइयोंसे आग्रह करना चाहिये तथा भगवद्भक्तिके प्रचारके लिये तन-मन-धनसे सबकी निष्कामभावसे विशेष सेवा करनी चाहिये एवं श्रीपरमात्मादेवकी शरण लेनी चाहिये। उसीको सब कुछ समझना चाहिये। फिर वह जो कुछ भी करे, उसीमें आनन्द मानना चाहिये। सबके साथ बहुत ही उत्तम बर्ताव करना चाहिये। माता-पिताकी सेवा करने, प्रतिदिन उनके चरणोंमें सिर नवाने और उनकी आज्ञा पालन करनेका विशेष ध्यान रखना चाहिये। अपने आचरण उत्तम बनाने चाहिये। अपने आचरण उत्तम बनाये बिना दूसरोंपर प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिये पहले आचरण सुधारनेकी तरफ तो बहुत ही ध्यान देनेकी आवश्यकता है। बहुत दिनोंतक इस प्रकार चेष्टा करनेपर बहुत आदमी सत्सङ्गमें लग सकते हैं। में जो बहुत आदमी लगे हैं, वे बहुत दिनोंकी चेष्टासे लगे हैं, मनुष्योंकी संख्या बढ़ते-बढ़ते बढ़ी है, वहाँकी जन-संख्या भी अधिक है। चिन्ता-फिक्र तो किसी बातका करना

ही नहीं चाहिये। यदि भगवान्‌की मर्जी आदमी कम बढ़ानेकी हो तो इसमें भी आनन्द मानना चाहिये, पर अपनी चेष्टा नहीं छोड़नी चाहिये। चेष्टा करना तो अपना कर्तव्य ही है।

सत्, चित्, आनन्दघन परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं— सब समय इस प्रकारका अभ्यास करना चाहिये। चाहे सो हो, श्रीपरमात्मादेवका भजन-ध्यान एक पल भी नहीं छोड़ना चाहिये। जिस जगह भी मन और नेत्र जायँ, उसी जगह एक वासुदेवको देखना चाहिये। अभ्यास बहुत तेज हो जानेपर तो संसारका काम करते हुए भी श्रीपरमात्मामें अटल स्थिति रह सकती है, फिर भगवद्गुणानुवादके द्वारा सब भाइयोंकी भगवान्‌में स्थिति बनी रहनी कौन बड़ी बात है? यदि लोग एक बार भगवद्भक्तिमें अच्छी तरह लग जायँ और भगवद्विषयका उन्हें आनन्द आ जाय तो फिर उनका अपने-आप ही प्रेम हो सकता है। एक बार इस विषयका सच्चा आनन्द आये बिना पूरा लाभ होना कठिन है। परन्तु पहले-पहल तो विश्वास कराके ही लगाना पड़ता है; साधन तेज होने तथा आनन्द आनेपर तो लोग स्वतः ही जोरसे लग सकते हैं और फिर लाभ भी जल्दी हो सकता है।

[४९]

एक तो निष्काम भावमें किञ्चित् भी दोष नहीं आना चाहिये। दूसरे, शास्त्रोंका अभ्यास तुम्हारे बहुत कम है, सो शास्त्रोंका अभ्यास करना चाहिये और श्रीगीताजीके अर्थमें बुद्धि लगानी चाहिये, जिससे श्रीपरमात्माका प्रभाव तथा गुप्त रहस्य जाना जाय। बहुत ही श्रद्धा-प्रेमसे भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग करके उनसे भगवान्‌का प्रभाव समझना

चाहिये। और उन पुरुषोंके वचनोंके अनुसार साधन करनेके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्नशील हो जाना चाहिये। उत्तम आचरणोंके लिये भी विशेष कोशिश करनी चाहिये। यद्यपि उत्तम आचरणोंके लिये चेष्टा करनेकी भी बहुत आवश्यकता है, परन्तु यदि भगवान्‌की भक्ति तथा सत्पुरुषोंके सङ्गके द्वारा श्री परमात्माका प्रभाव जान लिया जाय तो फिर उत्तम आचरण तो स्वाभाविक ही आ सकते हैं। श्रीपरमात्माकी प्राप्तिके लिये प्राण-पर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा अवसर पाकर भी यदि नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे। श्रीनारायणदेवकी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिये। श्रीपरमात्मादेव जिस प्रकार चेष्टा करनेसे शीघ्र प्रसन्न हों, उसी प्रकार तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये। भले ही प्राण चले जायँ, शरीर मिट्टीमें मिल जाय, कोई चिन्ता नहीं; शरीर फिर है ही किसलिये ?

[५०]

तुम्हारा प्रेम आजकल किसमें हो रहा है ? × × × × तुम इस असार संसारके विषय-भोगोंमें फँसकर अपने अमूल्य समयको बिता रहे हो, पर विचारनेकी बात है, क्या यह समय फिर वापस आवेगा ? याद रखना, यदि तुच्छ कामोंमें ही समय बिता दोगे और भगवान्‌के दर्शन हुए बिना ही संसारसे चले जाओगे तो अन्तमें पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा।

तुम अपनी शक्तिको क्यों नहीं सम्हालते हो ? तुम किसलिये भूल रहे हो ? पहले तुम्हारा साधन बहुत तेज हो रहा था किन्तु उस तरहका रोजगार अब क्यों नहीं होता है ? चाहे

जो हो, सांसारिक जालमें मनको एक क्षणके लिये भी नहीं फँसने देना चाहिये । जिस कामके लिये आये हो, उस काममें तुम्हें बहुत तेजीसे लग जाना चाहिये । ऐसा अवसर क्या सदा ही रहेगा ? समय बीता जा रहा है, गये दिन वापस नहीं आते । कलियुगके इस घोर समयमें थोड़े-से साधनसे भी परमात्मादेवकी प्राप्ति हो सकती है, फिर तुम किसलिये कटिबद्ध होकर चेष्टा नहीं करते ?

[५१]

तुमने लिखा कि आपके जचे सो लिखना चाहिये सो भाई ! पहलेकी अपेक्षा तुम्हारा सत्सङ्गमें प्रेम कम दीखता है । पत्र पढ़नेमें भी पहले और भी अधिक प्रेम था, साधनकी ओर भी समय-समयपर बहुत उत्तेजना हुआ करती थी, संसारके काम झंझटकी तरह मालूम दिया करते थे, ये सब बातें देखनेसे साधन कुछ कम मालूम देता है सो क्या बात है ? तुम्हें जो पहले पत्र लिखा गया था उसमें बड़ा उत्साह दिलाया गया था, उसका तुमपर क्या असर पड़ा ? पहले तुम्हारे एकान्तकी तथा सत्सङ्गकी बहुत टान रहा करती थी और बहुत जोशकी बातें भी हुआ करती थीं, पर अब क्या हुआ ? विचारना चाहिये और पहलेकी बातोंको बार-बार याद करना चाहिये । एक बार तुम्हारी झंझट जानकर काम छोड़ देनेकी भी इच्छा हो गयी थी एवं कई बार सब कुछ छोड़ देनेकी भी उत्तेजना हुआ करती थी, किन्तु अब संसारके पदार्थोंमें, स्त्री-पुत्रोंमें एवं शरीरके आराम और भोगोंमें प्रेम कुछ अधिक मालूम देता है । इस प्रेमको भगवत्प्राप्तिमें बाधक समझकर साधन करना चाहिये और श्रीगीताजीके पढ़नेका

आसरा लेना चाहिये। श्रीभगवान्‌के वचनोंको अमूल्य समझकर हृदयमें धारण करना चाहिये। इसमें श्रीपरमात्मादेवके गुणानुवाद ही भरे हुए हैं, इसलिये रात-दिन श्रीगीताजीके रटनेका जो अभ्यास है, वह नाम-जपसे भी बढ़कर है। यदि अर्थ और भावसहित इसका अभ्यास किया जाय तो उसकी तो बात ही क्या है? यदि श्रीगीताजीके उपदेश-के अनुसार आचरण हो जायँ अर्थात् उपदेश धारण हो जाय तब तो उसमें अनेकों मनुष्योंका उद्धार करनेकी सामर्थ्य हो जाय; फिर अपने कल्याणकी तो बात ही क्या है? इसीलिये श्रीगीताजी-का अभ्यास करनेके लिये विशेषरूपसे लिखा जाता है किन्तु तुम तो इतना खयाल करते नहीं। भाई! हम-तुम मित्र हैं, अतः हमारी बातोंको तुम खयाल न भी करो तो भी कोई हर्ज नहीं, परन्तु श्रीगीताजी तो श्रीभगवान्‌के वाक्य हैं, उनकी तरफ तो जरूर ध्यान देना चाहिये। ज्यादा क्या लिखें?

[५२]

श्रीपरमात्माके नामका जप हर समय करना चाहिये। जैसे लोभी मनुष्य रुपयेको नहीं भूलता, इसी प्रकार भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये। आपको विचारना चाहिये, यदि रुपयेके समान भी भगवान् न होते तो फिर भगवान्‌को कौन बुद्धिमान् पूछता? पहले जितने महात्मा, साधु, योगी, ऋषि, मुनि हुए हैं, सब भजन, ध्यान, सत्सङ्गके प्रतापसे ही हुए हैं। अतः भगवान्-का भजन-ध्यान तेज हो—ऐसी चेष्टा जल्दी करनी चाहिये।

[५३]

संसारमें आकर अपने मालिकको नहीं भूलना चाहिये। जिस कामके लिये संसारमें आना हुआ है, उस कामका भी खयाल रखना चाहिये। यदि अपना काम बनाये बिना ही चले जाना होगा तो बहुत भारी हानि है—इसे विचार लेना चाहिये। संसारमें आकर क्या किया ? संसारकी तो सारी ही वस्तुएँ धोखा देनेवाली हैं। इसलिये निरन्तर भगवान्‌की स्मृति रहे, वही काम करना चाहिये।

धन जोबन यो जायँगे जा बिधि उड़त कपूर।
नारायण गोबिन्द भज क्यों चाटे जगधूर॥

ऐसा विचारकर उस नारायणदेवका भजन-ध्यान करना चाहिये और भजन-ध्यान होनेके लिये उनके प्रेमी भक्तोंका सङ्ग करना चाहिये तथा कुछ शास्त्रोंका अभ्यास भी करना चाहिये।

मिलनेकी इच्छा लिखी सो आपके प्रेमकी बात है। संसारके झंझटमेंसे कुछ समय निकालना चाहिये। समय बीता जा रहा है, उसे अनमोल काममें लाना चाहिये और विचारना चाहिये कि इतने दिनतक हमने क्या किया ? यदि आगे भी इसी तरह समय बिता देंगे तो फिर श्रीभगवान्‌के दर्शन कैसे होंगे ?

[५४]

आपके बहुत-से पत्र आये। आपके प्रश्न अधिक थे और मुझे समय कम मिल पाता है—इसी कारण आपको उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ, इसके लिये आपको विचार नहीं करना चाहिये।

आपने पत्रमें मेरे लिये प्रशंसात्मक शब्द प्रयुक्त किये सो नहीं करने चाहिये। इसके लायक तो भगवान् ही हैं। मुझको तो एक साधारण भाईके समान समझकर साधारण शब्द लिखने चाहिये।

आपने साकार प्रभुकी उपासना प्रारम्भ की, किन्तु प्रभुके दर्शन न होनेके कारण फिर निराकारकी उपासना आरम्भ कर दी और बादमें निराकारकी उपासना भी अपने लिये कठिन समझकर छोड़ दी और साकारकी शुरू कर दी—सो इस तरह एक साधनपर अविश्वास करके दूसरे साधनके लिये मनको चलायमान नहीं करना चाहिये। अपने निश्चयके अनुसार एवं महापुरुषोंके आज्ञानुसार एक ही साधनपर दृढ़ विश्वास करके तत्पर होकर लग जाना चाहिये। उपासना साकार एवं निराकार दोनों ही उत्तम हैं। इनमेंसे जिसमें आपको सुगमता मालूम पड़े, वही कर सकते हैं।

आपने लिखा कि भक्ति पूरी न भी हुई और दयालु हरिकी दया हो गयी तो वे स्वयं गरुड़ छोड़कर आयेंगे, सो ठीक है। भगवान्‌की दया तो है ही, परन्तु विशेष दया प्रेमीके प्रेमको देखकर होती है। उनका प्रेमी भक्त जब कुछ भी सहारा न पाकर अधीर होकर रो उठता है और भगवान्‌से मिलनेके लिये अपने-आपको भी भूल जाता है, तब भगवान् भी उसे दर्शन देकर कृतार्थ करनेके लिये उसके प्रेमके वश हो, गरुड़ तो क्या, प्यारी-से भी प्यारी वस्तुको भी छोड़कर तुरंत दौड़े आते हैं। आवश्यकता है उनमें अनन्य प्रेम होनेकी।

आपको श्री‥ ने शिक्षाके विषयमें मुझसे पूछनेके लिये कहा सो यह उनकी भावुकता है। मैं शिक्षा देनेका

अधिकारी तो नहीं हूँ, परन्तु फिर भी आपलोगोंका प्रेम है—इस नाते कुछ लिख दिया करता हूँ।

आपने लिखा कि 'यहाँपर कतिपय ब्राह्मण विद्वान् होते हुए भी मैथिलोंकी अपेक्षा अधिक मांसाहारी हैं, फिर भी मैं अपने ज्ञानानुसार लोगोंको गीता पढ़ाया करता हूँ, जिससे कुछ भाइयोंने तो हिंसा त्याग भी दी।' सो यह बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है। हिंसा करनेवाले कुछ लोग आपसे प्रश्न करते हैं—लिखा सो उनके प्रश्नोंका तथा आपके दूसरे पत्रके प्रश्नोंका उत्तर नीचे दिया जाता है।

(१) प्रश्न—जीव अजन्मा और अवध्य है, उसे भला कोई कैसे मार सकता है? इस पाञ्चभौतिक शरीरके पाँचों तत्त्व अपने-अपने अंशमें मिल जाते हैं। आत्मा तो निर्विकार है, वह न किसीको मारता है, न मरवाता है; फिर लोग हिंसा किस प्रकार करते हैं?

उत्तर—यह ठीक है कि जीव अजन्मा और अवध्य है, उसे कोई नहीं मार सकता तथा इस पाञ्चभौतिक शरीरके पाँचों तत्त्व अपने-अपने अंशमें मिल जाते हैं, आत्मा निर्विकार है। वह न किसीको मारता है और न मरवाता है, परन्तु उस शुद्ध आत्माका जड शरीरके साथ संयोग होनेसे उस व्यष्टिचेतनकी जीव संज्ञा है। वह जीव अज्ञानसे इस पाञ्चभौतिक शरीरके साथ सम्बन्ध माननेके कारण बँधा हुआ है तथा इसके सुख-दुःखके साथ सुखी-दुखी होता है। अतः इस स्थूल शरीरसे प्राणोंका विच्छेद कर देना ही हिंसा है, लोग इस शरीरसे प्राणोंको जो अलग कर देते हैं, यही पाप करते हैं।

(२) प्र०—मनुष्य क्या कर सकता है? संसारमें जो कुछ होता है, सब ईश्वर ही करते हैं। इस विषयमें गीता अध्याय ११ के ३३ वें श्लोकका प्रमाण है। भगवान्‌ने कहा कि 'हे सव्यसाचिन्! ये तो मेरे द्वारा पहले ही मार दिये गये हैं, तू तो निमित्तमात्र बन!' फिर बकरोंको भी भगवान्‌द्वारा पहले-हीसे मारे गये क्यों न समझें? लोग तो निमित्तमात्र हैं।

उ०—श्रीभगवान्‌ने गीतामें ११ वें अध्यायके ३३ वें श्लोक-में जो अपने द्वारा पहले ही मारे हुओंको मारनेके लिये अर्जुनको निमित्तमात्र बननेकी आज्ञा दी सो तो उचित ही है। क्योंकि दुर्योधनके पास पाण्डवोंका राज्य और धन धरोहररूपसे था। उसको दुर्योधनने पाण्डवोंके माँगनेपर भी नहीं देना चाहा, बल्कि वह सेना एकत्र करके लड़नेको तैयार हो गया, यहाँतक कि आजीवन पाण्डवोंका अनिष्ट ही करता रहा। इन सब कारणोंसे वह आततायी था, किन्तु बेचारे बकरे तो आततायी नहीं हैं, वे तो निरपराध हैं। उनको मारनेके लिये तो भगवान्‌ने ऐसा कहीं नहीं कहा कि ये मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तुम इनको मारो, काटो और खाओ। बल्कि शास्त्रोंमें निरपराध प्राणियोंको मारना पाप बतलाया है तथा उस कर्मके फलस्वरूप नरकयन्त्रणा भोगनी पड़ेगी—ऐसा कहा है। अतः जो लोग अपनी भोगवासनाकी पूर्तिके लिये निरपराध प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वे दण्डनीय होते हैं। इस पापके विषयमें भगवान् न तो कर्ता हैं और न प्रेरक ही। इसमें तो मनुष्यका काम ही हेतु है (गीता ३। ३७)।

(३) प्र०—भगवान्‌ने दूसरे अध्यायमें कहा है कि जो जन्मता है, वह मरता है और मरनेवालेका जन्म निश्चित है।

इससे शरीर-वध होगा तो दूसरा नया शरीर मिल जायगा। अतः इसमें कौन किसकी हिंसा करते हैं ?

उ०—भगवान्‌ने जो दूसरे अध्यायमें इस प्रकार कहा है सो तो मोहके कारण हुई अर्जुनकी मान्यताके अनुसार कहा था। भगवान् तो ऐसा मानते ही नहीं। वे तो अर्जुनसे कहते हैं कि—'हे अर्जुन! यह जीव अवध्य है, अविनाशी है, किन्तु तुम यदि इसे विनाशशील मानते हो तो जो जन्मता है, वह मरता भी है तथा मरनेवालेका जन्म भी निश्चित है। अतः तुम्हारी मान्यतासे भी तुमको शोक नहीं करना चाहिये।' इसलिये भूलसे माननेवाला अज्ञानी जीव ही स्वार्थके कारण जीवोंकी हिंसा करता है।

(४) प्र०—गीताजीमें श्रीकृष्णने जब कि सम्पूर्णतः अहिंसा और अध्यात्मयोगका वर्णन किया तो फिर अर्जुन लड़नेको क्यों तैयार हो गया? जब युद्धमें अर्जुनके द्वारा ही इतनी हिंसा हुई और उसको हिंसक नहीं समझा गया तो फिर मांसाहारियोंको ही हिंसक क्यों माना जाता है?

उ०—गीतामें अहिंसावादका प्रतिपादन होते हुए भी न्याययुक्त हिंसाको हिंसा नहीं माना है। पाण्डवोंका युद्ध करके दुर्योधनादिको मारना न्याययुक्त इसीलिये है कि धरोहर-रूपसे रक्खे हुए राज्य और धनको पाण्डवोंके माँगनेपर भी न देना और उलटे डाकुओंकी तरह युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाना—यह अन्याय एवं अत्याचार है। पर बेचारे बकरे तो अन्यायी एवं अत्याचारी नहीं है, वे तो निरपराध हैं। अतः इनके मारनेवाले एवं खानेवाले सभी हिंसक समझे जाते हैं।

(५) प्र०—जो स्वयं मारते तो नहीं हैं परन्तु बाजारसे मांस मोल लेकर खाते है, क्या वे भी हिंसक माने जाते हैं?

उ०—अवश्य। शास्त्रमें छः प्रकारके हिंसक माने गये हैं। १ स्वयं प्राणिवध करना, २ वध करवाना, ३ मांस बेचना, ४ मांस खरीदना, ५ मांस पकाना और ६ मांस खाना। अतः इनमेंसे कोई-सा भी हो, वह हिंसक ही समझा जाता है।

(६) प्र०—उत्प्रेरक तो स्वयं भगवान् हैं, हमलोगोंसे जो कुछ होता है सब वे ही कराते हैं, फिर शास्त्र जीवपर दोष क्यों देते हैं?

उ०—शास्त्रोक्त न्याययुक्त प्रेरणा भगवान्‌की प्रेरणा है। शास्त्रसे विपरीत जो हमारे अन्तःकरणमें प्रेरणा होती है, वह भगवत्प्रेरणा नहीं है। उसका हेतु काम है—

अर्जुनके यह पूछनेपर कि—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥
(गीता ३। ३६)

'हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
(गीता ३। ३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।' इसीलिये शास्त्रने जीवपर दोष लगाया है।

(७) प्र०—हिंसा किसे कहते हैं ?

उ०—स्थूल देहसे प्राणोंके विच्छेद कर देनेका नाम हिंसा है।

(८) प्र०—आत्मा न जन्म लेता है न मरता है। न उसे सुख होता है तथा न दुःख ही। वह शुद्ध है। अतः वह पुण्य-पापका भागी भी नहीं होता। फिर ग्रन्थकारोंने नरक, स्वर्ग तथा निर्वाणपदका वर्णन किसके लिये किया ? उसका भागी कौन होता है ?

उ०—आपका कहना ठीक है कि आत्मा न जन्मता है, न मरता है, न उसे सुख-दुःख ही होता है और न वह पुण्य-पापको भोगनेवाला ही है। किन्तु उस शुद्ध आत्मा और जड शरीरके संयोगसे व्यष्टि चेतनकी जीव संज्ञा है। उस जीवको ही यह सब सुख-दुःख तथा पाप-पुण्य आदिका फल होता है और नरक, स्वर्ग तथा निर्वाणपद आदिका भी जीवके लिये ही शास्त्रोंने वर्णन किया है। स्थूल देहको जला देनेके बाद भी जीवका सूक्ष्म शरीरके साथ सम्बन्ध रहता है। जब महाप्रलय होता है, तब सूक्ष्मशरीर भी प्रकृतिमें विलीन हो जाता है। तब इसका सम्बन्ध प्रकृतिसे यानी कारणशरीरसे रहता है। जबतक जीवका कारणशरीरके साथ सम्बन्ध रहता है, तबतक जीवका आवागमन नहीं मिटता और उसको कर्मानुसार सुख-दुःखादि भोग भोगने पड़ते हैं। कारणशरीरका सम्बन्ध अनादि है और उसका हेतु अविद्या (माया) है। उस अविद्याका नाश ज्ञानसे होता है। ज्ञानकी प्राप्तिके लिये या तो ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये कि जिसकी कृपासे ज्ञानकी प्राप्ति होकर अविद्याका नाश हो—

श्रीभगवान्‌ने कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥*
(७ । १४)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥†
(१० । १०)

अथवा महापुरुषोंकी शरण जाना चाहिये । उनकी कृपासे भी ज्ञानकी प्राप्ति होकर अज्ञानका नाश हो सकता है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥‡
(४ । ३४

उपर्युक्त श्लोकोंका विस्तारसे अर्थ गीता-तत्त्वाङ्कमें देखना चाहिये ।

---

* 'क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं ।'

† 'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ।'

‡ 'उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे ।'

(९) प्र०—यह पाञ्चभौतिक शरीर तो यहीं नष्ट हो जाता है। फिर गीतामें दूसरे अध्यायके २२ वें श्लोकमें 'वासांसि जीर्णानि' इत्यादि किसके लिये कहा गया है ?

उ०—इस पाञ्चभौतिक शरीरको जला देनेके बाद भी जीवका सूक्ष्म शरीरके साथ सम्बन्ध रहता है। इससे वह सूक्ष्मशरीराभिमानी जीव पुनः दूसरे नये शरीरको धारण कर लेता है। इसी विषयको समझानेके लिये 'वासांसि जीर्णानि' इत्यादि कहा गया है।

(१०) प्र०—आत्मा तो आकाशवत् है। जब यह घट फूट जाता है तो आकाशका आकाश ही रह जाता है। कहीं घटके फूटनेसे आकाश भी नष्ट होता है ? अथवा गंदे घड़ेका मैल क्या आकाशको भी मैला कर सकता है ? यदि नहीं तो फिर इस शरीररूपी घटद्वारा किये हुए पुण्य-पापका भागी यह आत्मा कैसे होता है ?

उ०—आपका कहना ठीक है कि आत्मा शरीर-रूपी घटद्वारा किये गये पुण्य-पापका भागी नहीं होता, जीव होता है। क्योंकि आत्मा शुद्ध है, निर्लेप है और असङ्ग है।

(११) प्र०—प्राण और आत्मामें क्या भेद है ?

उ०—प्राण जड है और एक शरीरको त्यागकर दूसरे शरीरमें आता-जाता रहता है। आत्मा चेतन, ज्ञाता, साक्षी और अचल है।

(१२) प्र०—विशिष्टाद्वैतवादी श्रीरामानुजाचार्यके मतमें ईश्वर, जीव और माया पृथक्-पृथक् हैं तथा जीव मायासे

छूटनेके लिये ईश्वरको भजता है, परन्तु श्रीशङ्कराचार्यके मतमें जीव और ईश्वरको एक माना है सो क्या बात है ?

उ०—श्रीरामानुजाचार्यका कथन द्वैतवादसे है तथा श्रीशङ्कराचार्यका कथन अद्वैतवादसे । अतः अपनी-अपनी दृष्टिसे दोनों ही आचार्योंका कहना ठीक है ।

(१३) प्र०—भगवान्‌ने गीताके दूसरे अध्यायमें कहा कि 'हे अर्जुन ! ये योद्धागण तुम्हारी निन्दा करेंगे । तुम्हारे लिये इससे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है ?' तथा वे ही आगे चलकर कहते हैं कि 'जो निन्दा-स्तुति और मानापमानको बराबर समझता है, वह स्थिरधी है ।' ऐसा क्यों ?

उ०—भगवान्‌ने दोनों जगह अलग-अलग दृष्टिसे दो बातें कही हैं । पहली बात तो मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा चाहनेवाले बद्ध जीवके विषयमें है तथा दूसरी मानापमानमें समताकी बात जीवन्मुक्त महापुरुषके विषयमें है ।

(१४) प्र०—यज्ञशिष्ट भोजनको अमृत भोजन कहा गया है, परन्तु यज्ञशेष घृत क्यों नहीं खाया जाता ?

उ०—यज्ञशिष्ट भोजनको अमृत भोजन कहा गया सो ठीक है । यज्ञशेष घृत भी खा सकते हैं ।

(१५) प्र०—जूआ भी तो ईश्वरका अंश है । फिर जूआ खेलना पाप क्यों है ?

उ०—जूआ ही क्यों, जो कुछ भी है, सभी ईश्वरका अंश है । तथा सबको ईश्वरका रूप मानकर चाहे जो क्रिया करें, पापका भागी नहीं बनना पड़ता, क्योंकि ईश्वर सबमें है । और ऐसी सर्वत्र समबुद्धि हो जानेपर मनुष्य राग-द्वेषसे

रहित हो जाता है तथा राग-द्वेषसे रहित पुरुषके कर्म बन्धनके हेतु नहीं होते, वरं वे कर्म कर्म ही नहीं हैं—

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥*
(४ । २०)

किन्तु यह भी निश्चय समझ लेना चाहिये कि ऐसे सर्वत्र समबुद्धिवाले राग-द्वेषरहित पुरुषसे कभी भी जूआ आदि पापकर्म हो ही नही सकते ।

(१६) प्र०—वर्णव्यवस्थामें वीर्य प्रधान है या कर्म प्रधान ?

उ०—वर्णव्यवस्थामें वीर्य तथा कर्म (आचरण) दोनों ही प्रधान हैं। जो जाति और आचरण दोनोंसे ब्राह्मण हो, वही उत्तम ब्राह्मण गिना जाता है। कोई जातिसे तो ब्राह्मण हो, पर उसके आचरण ब्राह्मणों-जैसे न हों तो भी वह पूरा ब्राह्मण नहीं तथा आचरणोंसे ब्राह्मण हो और जातिसे न हो तो भी ब्राह्मण नहीं कहला सकता। फिर भी दोनो प्रधान होते हुए भी जीविकानिर्वाहके लिये जाति प्रधान है तथा मुक्तिके लिये कर्म प्रधान है।

(१७) प्र०—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण हनुमान्‌जीसे पाद-सेवा क्यों करवायी ?

उ०—हनुमान्‌जीसे पादसेवा करायी सो तो उचित ही

* 'जो पुरुष समस्त कर्मोंमे और उनके फलमे आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति वर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता ।'

है। क्योंकि वास्तवमें हनुमान्‌जी योनिसे तो बंदर ही थे, ब्राह्मण नहीं थे।

(१८) प्र०—बैंगनकी उत्पत्ति कहाँसे है ? तथा समाज में विशेषकर विधवा और अन्य लोग इसे क्यों नहीं खाते ?

उ०—बैंगनकी उत्पत्ति तो पृथ्वीसे ही है; परन्तु उसके बीजोंमें तामसीपन रहता है। अतएव पुराणोंमें इसका निषेध है। विधवा स्त्रियाँ तथा बहुत-से लोग इसे नहीं खाते सो उचित ही है।

आपने श्रीगीताजीके प्रचारके लिये सप्ताह-गीताका प्रचार किया सो उत्तम बात है। वहाँके लोग हिन्दी नहीं जानते, अतः आप उनको गीता अपनी भाषामें समझाते हैं, सो बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है और कई भाइयोंकी श्रीगीताजीमें श्रद्धा हो गयी सो आनन्दकी बात है।

आपने लिखा कि अहिंसाके विषयपर पूर्ण विवेचन करके विस्तारसे लिखें सो अहिंसाका विषय बहुत गम्भीर है, अतः पत्रद्वारा अधिक विस्तारसे समझाना कठिन प्रतीत होता है। इस विषयमें यदि आपका कभी सम्मुख मिलना हो तो विशदरूपसे समझाया जा सकता है। फिर भी आपकी प्रसन्नताके लिये सूत्ररूपसे लिख दिया गया है।

निरपराधी प्राणियोंके शरीरसे प्राणोंका वियोग करनेपर उसका इस शरीरसे सम्बन्ध छूटकर दूसरे नये शरीरसे सम्बन्ध होता है तो जीवको पहला शरीर छूटते तथा नया धारण करते समय बेहद दुःख होता है। इसी कारणसे हिंसाको पाप तथा अहिंसाको यानी किसी भी प्राणीको दुःख न पहुँचानेको परम धर्म माना गया है।

आपने लिखा कि अहिंसाका प्रकरण समझमें आ जानेसे कई भाई हिंसा करना छोड़ देंगे सो ठीक है। इसके लिये ऊपर लिखा हुआ अहिंसाका विषय भाई लोगोंको समझा देना चाहिये।

[५५]

सप्रेम हरिस्मरण। आपके बहुत-से पत्र आये, जिनमें प्रश्न अधिक थे तथा उनका उत्तर देनेके लिये समय भी अधिक आवश्यक था, किन्तु मेरे पास समय बहुत कम रहता है, इसीलिये पत्रोत्तर देनेमें इतना विलम्ब हो गया, अतः इसके लिये विचार न करें। अब इसके लिये समय निकालकर आपके पत्रोंका उत्तर नीचे दिया जाता है—

आपने पत्रमें घर, कुटुम्ब तथा घरवालोंसे हठपूर्वक अपने अलग होनेके समाचार लिखे, सो मालूम किये।

आपने अपनेको प्रमेहकी बीमारीसे पीड़ित बतलाते हुए इसकी चिकित्साके लिये बहुत रुपया खर्च हो जानेपर भी आराम न होनेकी बात लिखी सो मालूम की। इसके लिये वैराग्य और संयमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन, पथ्य-परहेज एवं संयमसे रहना ही मुख्य ओषधि है।

आपने अपनी जन्मकुण्डली मुझे दिखाकर उचित सलाह लेनेके लिये लिखा, सो आपके प्रेमकी बात है, किन्तु जन्मकुण्डलीका न तो मुझे कोई विशेष ज्ञान ही है तथा आजकल जन्मकुण्डलीकी सारी बातें न मिलनेके कारण न मेरी इनपर विशेष श्रद्धा ही है। अतः आपको जन्मकुण्डली मेरे पास भेजनेके लिये प्रयास नहीं करना चाहिये।

होनी चाहिये । कोई-कोई भाई १००० मणिकाओंकी भी माला बनवाकर जप करते हैं किन्तु इसका विधान नहीं है। अतएव इसके लिये १०८ मणिकाओंकी माला ही उत्तम है।

प्र० ३—भगवान् श्रीकृष्णके नाम-जपके लिये माला तुलसी या चन्दनकी होनी चाहिये अथवा रुद्राक्षकी ?

उ०—भगवान् श्रीकृष्णके नामका मन्त्र जपनेके लिये माला तुलसी और चन्दन दोनों प्रकारकी ही उत्तम मानी जाती है। रुद्राक्षकी माला तो श्रीशिवमन्त्रके जपके लिये विशेष उपयोगी समझी जाती है।

प्र० ४—यदि नाम-जप मालाद्वारा नहीं करें तो क्या कोई शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन होगा ?

उ०—नाम-जप यदि मालाद्वारा नहीं कर सकें तो अँगुलियोंके पोरुओंपर भी कर सकते हैं अथवा बिना संख्याके भी नाम-जप किया जा सकता है। इसमें शास्त्रा[illegible] कोई उल्लङ्घन नहीं होता।

प्र० ५—मालापर नाम-जप संख्यापूर्व[illegible]क है या माला हाथमें लेकर बिना संख्याके प्रेमपू[illegible] करना

...नोंमें प्राप्त हो जायँ, यह लालसा कब पूर्ण हो ? सो इसके लिये अनन्य श्रद्धा और प्रेमकी आवश्यकता है ।

आपने मुझसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की तथा मेरा एक फोटो मँगाया सो आपके प्रेमकी बात है, किन्तु फोटो भेजना मैं नीतिविरुद्ध मानता हूँ । अतएव इस विषयमें मैं लाचार हूँ ।

आपने मेरी शरण लेनेके लिये लिखा सो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये, क्योंकि मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, शरण लेने योग्य तो एक परमात्मा ही हैं । उनकी शरण होनेसे वे सब कुछ कर सकते हैं ।

आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

प्रश्न १—माला जपनेकी क्या विधि है ? अर्थात् माला जपते समय किन-किन अँगुलियोंका मणिकेके साथ स्पर्श करें तथा एक माला पूर्ण होनेपर फिर किधरसे जपें ?

उत्तर—मालापर जप करनेमें अँगूठा, मध्यमा और अनामिका इन तीनों अँगुलियोंको परस्पर मिलाकर मणिकासे स्पर्श होता है तथा प्रथम आरम्भ करते समय सुमेरुके पाससे आरम्भ कर सुमेरुके पास ही आकर समाप्त करे, किन्तु सुमेरुको उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये अर्थात् जो मणिका सबके अन्तमें फेरी गयी थी, फिर उसी मणिकासे आरम्भ कर वापस सुमेरुतक लाना चाहिये ।

प्र० २—माला जपते समय सुमेरु आते ही अड़चन-सी मालूम पड़ती है । क्या इस अड़चनको दूर करनेके लिये १००० मणिकाओंकी माला बनवाकर ...ते हैं ?

उ०—माला जपनें...

आपने अपनेको शारीरिक अस्वास्थ्य तथा मन, बुद्धिका दुखी बतलाया सो इसके लिये भगवान्‌का भजन-ध्यान और स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे इनका नाश होकर आपके चित्तमें प्रसन्नता हो सकती है।

आपने लिखा कि मैं सब काम छोड़कर छबीले लालाको भजना चाहता हूँ; किन्तु यह काम प्रारम्भिक अवस्थामें आरम्भ न होनेके कारण अब मन अन्यत्र भटकता है। जप-ध्यान पूर्णरूपेण नहीं बनते हैं—इससे मुझको पश्चात्ताप भी है। सो मालूम किया। बीती हुई अवस्थामें साधन शुरू न किया तो कोई बात नहीं; अब भी बाकीकी अवस्थाको तो साधनमय ही बना देना चाहिये। न जाने मृत्यु कब अचानक आ उपस्थित हो जाय। यदि बाकीकी अवस्था भी यों ही गफलतमें चली जायगी तो आगे इससे भी ज्यादा पछताना पड़ सकता है। पर, फिर क्या होगा? मनुष्य-जीवन, जो भगवान्‌को प्राप्त करनेका एकमात्र साधन था, वह यों ही खो दिया। अस्तु, अपने हृदयसे श्रद्धा और प्रेमकी कमीको हटाकर साधनके लिये तत्पर होकर लग जाना चाहिये। विवेक और वैराग्यबुद्धिसे मनको समझाकर तथा भजनको अमृतके समान समझकर श्रद्धा और प्रेमपूर्वक तत्परतासे निरन्तर भजन करना चाहिये। यदि इस प्रकार न हो सके तो भजनके लिये हठपूर्वक जी तोड़कर परिश्रम तो करना ही चाहिये।

आपने लिखा कि कभी-कभी सच्चे प्रेम-बिन्दुका आभास अवश्य होता है, परन्तु वह लवमात्र होता है। अतः उसकी वृद्धिके लिये भजन और सत्सङ्ग करना उत्तम है।

आपने पूछा कि रसखान भक्तकी तरह छबीले लाला चंद

दिनोंमें प्राप्त हो जायँ, यह लालसा कब पूर्ण हो ? सो इसके लिये अनन्य श्रद्धा और प्रेमकी आवश्यकता है।

आपने मुझसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की तथा मेरा एक फोटो मँगाया सो आपके प्रेमकी बात है, किन्तु फोटो भेजना मैं नीतिविरुद्ध मानता हूँ। अतएव इस विषयमें मैं लाचार हूँ।

आपने मेरी शरण लेनेके लिये लिखा सो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये, क्योंकि मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, शरण लेने योग्य तो एक परमात्मा ही हैं। उनकी शरण होनेसे वे सब कुछ कर सकते हैं।

आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

प्रश्न १—माला जपनेकी क्या विधि है ? अर्थात् माला जपते समय किन-किन अँगुलियोंका मणिकेके साथ स्पर्श करें तथा एक माला पूर्ण होनेपर फिर किधरसे जपें ?

उत्तर—मालापर जप करनेमें अँगूठा, मध्यमा और अनामिका इन तीनों अँगुलियोंको परस्पर मिलाकर मणिकासे स्पर्श होता है तथा प्रथम आरम्भ करते समय सुमेरुके पाससे आरम्भ कर सुमेरुके पास ही जाकर समाप्त करे, किन्तु सुमेरुको उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये अर्थात् जो मणिका सबके अन्तमें फेरी गयी थी, फिर उसी मणिकासे आरम्भ कर वापस सुमेरुतक लाना चाहिये।

प्र० २—माला जपते समय सुमेरु आते ही अड़चन-सी मालूम पड़ती है। क्या इस अड़चनको दूर करनेके लिये १००० मणिकाओंकी माला बनवाकर उसपर जप सकते हैं ?

उ०—माला जपनेमें सुमेरुके आनेपर

होनी चाहिये । कोई-कोई भाई १००० मणिकाओंकी भी माला बनवाकर जप करते हैं किन्तु इसका विधान नहीं है। अतएव इसके लिये १०८ मणिकाओंकी माला ही उत्तम है।

प्र० ३—भगवान् श्रीकृष्णके नाम-जपके लिये माला तुलसी या चन्दनकी होनी चाहिये अथवा रुद्राक्षकी ?

उ०—भगवान् श्रीकृष्णके नामका मन्त्र जपनेके लिये माला तुलसी और चन्दन दोनों प्रकारकी ही उत्तम मानी जाती हैं। रुद्राक्षकी माला तो श्रीशिवमन्त्रके जपके लिये विशेष उपयोगी समझी जाती है।

प्र० ४—यदि नाम-जप मालाद्वारा नहीं करें तो क्या कोई शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन होगा ?

उ०—नाम-जप यदि मालाद्वारा नहीं कर सकें तो अँगुलियों-के पोरुओंपर भी कर सकते हैं अथवा बिना संख्याके भी नाम-जप किया जा सकता है। इसमें शास्त्राज्ञाका कोई उल्लङ्घन नहीं होता।

प्र० ५—मालापर नाम-जप संख्यापूर्वक करना ठीक है या माला हाथमें लेकर बिना संख्याके प्रेमपूर्वक नाम-जप करना उत्तम है ?

उ०—सकामभाव और निष्कामभाव दोनों प्रकारसे मालापर ही नाम-जप करना उत्तम है। निष्कामभावसे जप करनेमें यदि माला न भी हो तो कोई हर्जकी बात नहीं है, किन्तु फलकी इच्छा रखनेवालोंको तो कामना-सिद्धिके लिये मालापर ही मन्त्रका जप करना आवश्यक है।

प्र० ६—'कृष्ण' इस नामको मन्त्र मानकर प्रत्येक कार्यमें सिद्धिके उद्देश्यसे जप सकते हैं या नहीं ?

उ०—जप सकते हैं ।

प्र० ७—प्यारे श्रीकृष्णके प्रसन्नार्थ विधिपूर्वक षोडशोपचार-से पूजा किस प्रकार करनी चाहिये ? कृपया इसे विस्तारसे लिखे ।

उ०—इसका विधिपूर्वक विस्तार 'गीताप्रेस, गोरखपुर' से प्रकाशित 'श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश' नाम्नी पुस्तिका मँगाकर उसमें देखना चाहिये ।

प्र० ८—ग्रहोंकी शान्तिका सत्य और अटल उपाय क्या है ?

उ०—ग्रहोंकी शान्तिके लिये शास्त्रोंमे जो जप, पूजा और अनुष्ठानादि बतलाये गये है, उन्हींको विधिपूर्वक करना चाहिये, किन्तु सब ग्रहोंकी शान्तिके लिये सबसे बढ़कर उपाय तो भगवान्‌का निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक भजन करना ही है । यही सत्य और अटल उपाय है । इससे सब ग्रहोंकी शान्ति अपने-आप हो जाती है ।

प्र० ९—

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥

कृपया इस उपर्युक्त श्लोकका आशय समझाइये ? इसके कर्ताने किस उद्देश्यसे अपने हाथकी गुँथी माला, अपने हाथका घिसा चन्दन और अपने हाथके लिखे स्तोत्रका निषेध किया ?

उ०—इस श्लोकका तात्पर्य किसीके निषेधमे नहीं है, इसका अर्थ है—'अपने हाथसे गुँथी हुई मालापर जप करनेसे तथा अपने हाथसे घिसे हुए चन्दनका तिलक करनेसे और अपने हाथसे लिखे गये स्तोत्रके पाठसे (मनुष्य) इन्द्रके भी ऐश्वर्यको हरण कर लेता है ।'

होनी चाहिये । कोई-कोई भाई १००० मणि
बनवाकर जप करते हैं किन्तु इसका विधान
इसके लिये १०८ मणिकाओंकी माला ही उत्त

प्र० ३—भगवान् श्रीकृष्णके नाम-जपके
या चन्दनकी होनी चाहिये अथवा रुद्राक्षकी

उ०—भगवान् श्रीकृष्णके नामका मन्त्र
तुलसी और चन्दन दोनों प्रकारकी ही उत्त
रुद्राक्षकी माला तो श्रीशिवमन्त्रके जपके लि
समझी जाती है ।

प्र० ४—यदि नाम-जप मालाद्वारा नहं
शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन होगा ?

उ०—नाम-जप यदि मालाद्वारा नहीं क
के पोरुओंपर भी कर सकते हैं अथवा बिन
जप किया जा सकता है । इसमें शास्त्रा
नहीं होता ।

प्र० ५—मालापर नाम-जप संख्यापूर्व
माला हाथमें लेकर विना संख्याके प्रेमपू
उत्तम है ?

उ०—सकामभाव और निष्कामभाव
ही नाम-जप करना उत्तम है । निष्काम
माला न भी हो तो कोई हर्जकी बात नहं
रखनेवालोंको तो कामना-सिद्धिके लिये
करना आवश्यक है ।

प्र० ६—'कृष्ण' इस नामको मन्त्र
सिद्धिके उद्देश्यसे ... हैं या नहीं ?

उ०—जप सकते हैं।

प्र० ७—प्यारे श्रीकृष्णके प्रसन्नार्थ विधिपूर्वक षोडशोपचार-से पूजा किस प्रकार करनी चाहिये ? कृपया इसे विस्तारसे लिखें।

उ०—इसका विधिपूर्वक विस्तार 'गीताप्रेस, गोरखपुर' से प्रकाशित 'श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश' नाम्नी पुस्तिका मँगाकर उसमें देखना चाहिये।

प्र० ८—ग्रहोंकी शान्तिका सत्य और अटल उपाय क्या है ?

उ०—ग्रहोंकी शान्तिके लिये शास्त्रोंमें जो जप, पूजा और अनुष्ठानादि वतलाये गये हैं, उन्हींको विधिपूर्वक करना चाहिये, किन्तु सब ग्रहोंकी शान्तिके लिये सबसे बढ़कर उपाय तो भगवान्‌का निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक भजन करना ही है। यही सत्य और अटल उपाय है। इससे सब ग्रहोंकी शान्ति अपने-आप हो जाती है।

प्र० ९—

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम्।
स्वहस्तलिखित स्तोत्र शक्रस्यापि श्रिय हरेत्॥

कृपया इस उपर्युक्त श्लोकका आशय समझाइये ? इसके कर्ताने किस उद्देश्यसे अपने हाथकी गुँथी माला, अपने हाथका घिसा चन्दन और अपने हाथके लिखे स्तोत्रका निषेध किया ?

उ०—इस श्लोकका तात्पर्य किसीके निषेधमें नहीं है, इसका अर्थ है—'अपने हाथसे गुँथी हुई मालापर जप करनेसे तथा अपने हाथसे घिसे हुए चन्दनका तिलक करनेसे और अपने हाथसे लिखे गये स्तोत्रके पाठसे (मनुष्य) इन्द्रके भी ऐश्वर्यको हरण कर लेता है।'

प्र० १०—भगवान्से याचना करनेपर याचक जो चाहता है, भगवान् वही दे देते हैं। अतः मैं ग्रहशान्ति चाहता हूँ, क्या भगवान् दे देंगे?

उ०—यदि इसमें आपका हित होगा तो भगवान् ग्रहशान्ति कर भी सकते हैं तथा इसमें आपका लाभ भगवान् न समझे तो न भी करें।

प्र० ११—मुझे स्वप्नमें अधिकतर लिङ्गेन्द्रियके दर्शन होते हैं। इसमें शिवजी मेरी ईश-आराधनामें रुकावट डालते है या मायाका प्रपञ्च है अथवा किसी बुरे समयकी सूचना है?

उ०—इसमें न तो शिवजी ही ईश-आराधनामें विघ्न डालते हैं और न यह मायाका प्रपञ्च ही है एवं न किसी बुरे समयका सूचक ही है। इसमें तो स्वभावका दोष ही स्वप्नमे भासित होता है। उसका सुधार करनेके लिये रात्रिको सोते समय गजेन्द्रमोक्ष, श्रीगीताजी अथवा श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करने-करते या भगवान्के नामका जप और ध्यान करते-करते सो जाना चाहिये। इससे बुरे स्वप्नोंका नाश हो सकता है।

प्र० १२—कृपया धैर्यधारणका साधन बतलाइये?

उ०—मनसे विरुद्ध कोई घटना उपस्थित हो या मनसे प्रतिकूल किसी पदार्थकी प्राप्ति हो तो उसे अपने कर्मानुसार भगवान्का किया हुआ विधान या भगवान्का भेजा हुआ पुरस्कार मानना चाहिये। इस प्रकार माननेसे धैर्य धारण हो सकता है और मनकी प्रसन्नता भी होती है।

प्र० १३—आप मेरे उद्धारका ध्यान भूल न जाइयेगा?

उ०—भगवान्की शरण होकर करुणा और प्रेमभावसे

भगवान्से प्रार्थना और भजन-ध्यान करना चाहिये। इससे सहज ही उद्धार हो सकता है। मै तो एक साधारण मनुष्य हूँ, किसीका उद्धार करनेकी मै अपनेमें सामर्थ्य नही मानता। भगवान्की शरण होनेसे वे सब कुछ कर सकते हैं।

प्र० १४—भोजनमें टमाटर, बैंगन, लहसुन, लौकी, प्याज, गोभी और गाजर आदि पदार्थ क्यों नही खाये जाते?

उ०—टमाटर और लौकी खानेमें तो कोई हर्ज नही है, गोभीमे जीवहिंसा होती है तथा लहसुन, प्याज, गाजर और बैंगन इत्यादिको तामसी पदार्थ समझकर शास्त्रोंने निषेध किया है, क्योंकि इनको खानेसे अन्तःकरणकी वृत्तियाँ खराब होती हैं। इसलिये ये त्याज्य हैं।

प्र० १५—दिव्य शब्दका प्रयोग किन-किन लोकोंके विषयमे आता है, क्या नाशवान् स्वर्गलोकादि भी दिव्य हैं?

उ०—जो पदार्थ प्रकाशमान हो, अलौकिक हो, शुद्ध हो, ऐसे पदार्थके विषयमें दिव्य शब्दका प्रयोग किया जाता है। इस भूलोकके देदीप्यमान शुद्ध पदार्थ भी दिव्य हैं, किन्तु इनकी अपेक्षा देवता और उनके भोग दिव्य हैं तथा ये सब ब्रह्माके प्रपञ्चके अन्तर्गत ही हैं। इन सबसे परम दिव्य भगवान्का स्वरूप और उनका धाम है, जो ब्रह्माके प्रपञ्चसे अत्यन्त विलक्षण और परम दिव्य है।

प्र० १६—इस ब्रह्माण्डके हरि, हर और ब्रह्मा—ये तीन देव ही मुख्य हैं तो अनेकानेक ब्रह्माण्डोंमें भी यही बात होगी?

उ०—स्वयं परमात्मा ही अनन्त ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपमें संस्थित होते हैं।

प्र० १७—तुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें 'रोम रोम प्रति राजहिं कोटि कोटि ब्रह्मांड' इस प्रकार कहा है, तो क्या श्रीकृष्ण और श्रीविष्णु भगवान्‌के विषयमें भी यही समझा जाय ?

उ०—हाँ, तुलसीदासजीका भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें 'रोम रोम प्रति राजहिं कोटि कोटि ब्रह्मांड' यह मानना उचित ही है, क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण एवं श्रीविष्णु पूर्णब्रह्म परमात्मा ही हैं। महासर्गके आदि सत्ययुगमें श्रीविष्णु, त्रेतायुगमें श्रीराम तथा द्वापरयुगमें श्रीकृष्णरूपसे वे ही प्रकट हुए हैं। जैसे तुलसीदासजीकी दृष्टिमें 'रोम-रोम' इत्यादि पद भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें है, उसी प्रकार सूरदासजीकी दृष्टिमें श्रीकृष्णके एवं ध्रुवकी दृष्टिमें श्रीविष्णुभगवान्‌के विषयमें समझना चाहिये।

प्र० १८—यदि भगवान्‌के अनन्यभक्त अपने-अपने इष्टके सिवा अन्य किसीको नहीं चाहते तो श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं श्रीविष्णुके उपासक उनके पृथक्-पृथक् लोकोंको प्राप्त होते होंगे ?

उ०—नहीं, भगवान्‌का जो परम नित्यधाम है, वही भगवान् श्रीरामके भक्तोंके लिये साकेतलोक, श्रीकृष्णके भक्तोंके लिये वही गोलोक एवं श्रीविष्णुके भक्तोंके लिये वही वैकुण्ठधाम है।

प्र० १९—गीताडायरीको भले-बुरे हाथोंका स्पर्श होता है तो इसमें कोई अपराध तो नहीं है ?

उ०—अपराध तो कुछ भी नहीं है, क्योंकि श्रीगीताको डायरीका रूप दे रक्खा है। फिर भी अपवित्र हाथ लगानेसे बचाना ही अच्छा है।

उ०—योगसाधन एवं ईश्वरकी अनन्य शरण होनेपर ईश्वरकी दया होनेसे बन सकता है।

प्र० २५—क्या देवता आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकते ?

उ०—देवयोनि भोगयोनि है, इसलिये उनका मुक्तिमें अधिकार नहीं है, किन्तु ईश्वरकी विशेष कृपासे वे भी कर सकते हैं।

प्र० २६—क्या सुख भी दुःखकी तरह जबरन् भोगना पड़ता है ?

उ०—हाँ, सुख भी दुःखकी तरह बलात्कारसे प्राप्त हो सकता है, किन्तु साधक चाहे तो सुखका त्याग भी कर सकता है।

प्र० २७—आजकल आकाशवाणी क्यों नही होती ?

उ०—श्रद्धा, भक्ति और आस्तिकभावकी कमीके कारण इस घोर कलिकालमें आकाशवाणी होनेका नियम नही है।

प्र० २८—क्या रेडियो स्वर्गतक पहुँच सकता है ?

उ०—शब्द आकाशका गुण होनेसे वह आकाशमें सब जगह व्यापक हो जाता है, किन्तु स्वर्गमें इस यन्त्रका नहीं है, इस कारण वहाँ रेडियो नहीं पहुँच सकता।

प्र० २९—ईश्वरने संसार-वैचित्र्य किसलिये बनाय यदि विनोदके लिये बनाया तो अनेक जीवोंको दुखी नान नहीं है, यह तो निर्दयता है।

उ०—संसार-वैचित्र्य व है तथा न उनकी निर्दयता ही हैं; उनको उनके कर्मोंके अनु संसार बनाया गया है।

प्र० ३०—जब सबसे पहले सृष्टि हुई थी तो सभी जीव एक-से कर्म करनेवाले हुए होंगे ?

उ०—सृष्टिके आरम्भका प्रश्न शास्त्र, युक्ति एवं न्यायविरुद्ध है, क्योंकि सृष्टि अनादि है, इसकी कभी शुरुआत नहीं है। इसलिये कर्मकी विचित्रता भी अनादि है।

प्र० ३१—पतन होनेकी बुद्धि कहाँसे प्राप्त होती है ?

उ०—अविद्या, अहंकार, राग और द्वेष आदि दुष्ट स्वभावसे तथा नीच पुरुषोंके संगसे पतन होनेकी बुद्धि प्राप्त होती है।

प्र० ३२—ईश्वरेच्छा प्रत्येक बातमें लागू क्यों नहीं होती ? जैसे सुख-दुःख और उत्पत्ति-प्रलय आदि।

उ०—ईश्वरेच्छा सभीमें लागू होती है, किन्तु ईश्वरका अपना कोई निजी स्वार्थ न होनेके कारण उनकी इच्छा शुद्ध होती है और जीवोंके हितके लिये ही जीवोंको कर्मानुसार फल भुगताने-के निमित्त होती है।

प्र० ३३—'गहना कर्मणो गतिः' क्या यह बात मुक्त पुरुषके लिये भी लागू है ?

उ०—मुक्त पुरुषके लिये यह बात लागू नहीं है क्योंकि मुक्त पुरुष इसके रहस्यको जानता है। इसके विशेष विस्तारके लिये 'गीतातत्त्वाङ्क'में चौथे अध्यायके १७-१८ वें श्लोकोंका अर्थ देखना चाहिये।

प्र० ३४—स्वर्गमें साम्यवाद है या अपना-अपना कर्मभोग ?

उ०—स्वर्गमें साम्यवाद नहीं है, वहाँ तो कर्मोंके अनुसार दिव्य भोग भोगे जाते हैं। यथार्थ शुद्ध साम्यवाद तो भगवानके नित्य परम धाममें है।

प्र० ३५—आजकल-जैसे आश्चर्यप्रद आविष्कार क्या कभी पहले भी हुए थे ?

उ०—हिरण्यकशिपु तथा रावण आदि असुर और राक्षसोंके समयमे तो इससे भी बढ़कर थे। क्योंकि वे इच्छानुसार अनेक रूप धारण कर लेते थे तथा अन्तर्धान होना और फिर प्रकट होना इत्यादि भी कर सकते थे।

प्र० ३६—भगवान्‌ने जब तीन सुन्दर-सुन्दर युगोंका निर्माण किया तो फिर इस दानवराज कलिकी सृष्टि इस प्रकार क्यों की ? यदि इस कलिकालमें 'हरेर्नामैव केवलम्' इससे कल्याण समझकर की तो फिर सभी लोग सदाचारी क्यों नहीं हैं ? इसपर इस समय होनेवाले पापोंसे यदि पृथ्वी भूकम्प करके जीवोंका संहार कर दे तो क्या कोई हिंसा है ?

उ०—पता नही। यह सब ईश्वरकी दिव्य लीला है।

प्र० ३७—अप्सराएँ वेश्या हैं या अलग जाति है ?

उ०—वे वेश्याएँ नहीं है, अप्सरा ही है। इनमें यही अन्तर है कि वेश्या तो स्वेच्छासे पापकर्म करके पतनका मार्ग बनाती है तथा अप्सराएँ ईश्वरके विधानसे स्वर्गमें रहनेवाले प्राणियोंको दिव्यभोग भुगतानेके लिये बनायी गयी हैं।

प्र० ३८—विदेह नगरीमें वेश्याएँ भी रहती थीं। फिर उस समय राजा जनकने उन्हें निकलवा क्यो नही दिया, जिससे कि लोगोंका पतन होनेसे बचाव होता ?

उ०—उस समयकी परिस्थितिसे हम जानकार नहीं हैं, अतः इसका उत्तर राजा जनक ही दे सकते है।

प्र० ३९—स्तोत्रपाठ तथा स्वाध्याय मनमें करना चाहिये या कुछ उच्चारणसे ?

उ०—दोनों प्रकार कर सकते हैं, किन्तु उच्चारण करके करना उत्तम है । क्योंकि मनमें करनेसे अशुद्धि रहनेकी सम्भावना है ?

प्र० ४०—श्रीगोपालसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम, गीता, रामायण और श्रीमद्भागवत इत्यादि क्या दुर्गासप्तशतीकी तरह कीलित हैं ।

उ०—यह सब तन्त्रवादी और फलकी इच्छा रखकर कर्म करनेवालोंके लिये ही कीलित है । निष्कामभावसे भगवदर्थ कर्म करनेवाले भक्तोंके लिये नही ।

प्र० ४१—जल्दी-से-जल्दी काम वन जाय, इस भावनासे भगवान् श्रीकृष्णके लिये स्तोत्रपाठ, स्वाध्याय, श्रवण, जप, ध्यान, चिन्तन और विधिवत् षोडशोपचारसे पूजा किस तरह करनी चाहिये ?

उ०—पत्रद्वारा इसे विस्तारसे समझाना कठिन है, कभी प्रत्यक्ष मिलना हो तो पूछ सकते हैं ।

प्र० ४२—आराधनक्रम नित्य नियमपूर्वक आनन्दसे निभ सके, इसके लिये मुझे कौन-से शुभ दिनमे आराधना प्रारम्भ करनी चाहिये ?

उ०—जिस दिन दिलमे श्रद्धा, प्रेम और उत्साह हो, उसी दिन आरम्भ कर देनी चाहिये क्योंकि इसके लिये वही शुभ मुहूर्त है ।

प्र० ४३—भगवान्के घरमे देर है, इसलिये अंधेर है इसका क्या कारण है ?

उ०—आपने भगवान्के घरमें देरको अंधेर कहा सो उचित

नहीं है; क्योंकि भगवान्‌के घरका फैसला सर्वथा यथार्थ होता है। वहाँ अंधेर नहीं है; पर यदि देर है तो उस देरमें भी जीवों-का हित ही भरा हुआ होता है।

प्र० ४४—भगवान् जो करते हैं अच्छा ही करते हैं, फिर क्या वर्तमान महासमर भी भगवान्‌का ही विधान है ?

उ०—जब-जब पृथ्वीपर पापियोंकी वृद्धिके कारण भार हो जाता है, तब-तब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् कोई-न-कोई निमित्त बना देते हैं। अतः वर्तमान समयका महायुद्ध भी पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान्‌का ही विधान है।

प्र० ४५—भजन करनेके लिये भगवान्‌ने जब मनुष्यदेह बनायी तो फिर माया पीछे क्यों लगायी ?

उ०—माया तो अनादिकालसे पीछे लगी हुई है, भगवान्‌ने पीछेसे नहीं लगायी।

प्र० ४६—संवत् २००० के अन्तर्गत विश्वमें क्या कोई भारी परिवर्तन होनेवाला है ?

उ०—धन-जनका नाश और राज्यका परिवर्तन हो रहा है तथा और भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त किसी अच्छे परिवर्तन होनेकी या सत्ययुग आनेकी आशा तो नहीं है।

प्र० ४७—भगवद्दर्शन प्रारब्धसे होता है या पुण्य-कर्मसे अथवा भगवदिच्छासे ?

उ०—श्रद्धा और प्रेमपूर्वक भगवान्‌का भजन, ध्यान करनेसे एवं भगवान्‌की दयासे भगवान्‌का दर्शन हो सकता है।

प्र० ४८—ज्योतिःस्वरूप भगवान्‌का क्या स्वरूप है ? क्या वे सबसे अगम्य एवं दुर्भेद्य आदि स्थानमें विराजते हैं ?

उ०—भगवान्‌का ज्योतिःस्वरूप ज्ञानमय है, वे आकाशके समान सभी जगह विराजते हैं।

प्र० ४९—ज्योतिःस्वरूप भगवान्‌का चिन्तन किस प्रकार करना चाहिये ?

उ०—ज्योतिःस्वरूप भगवान्‌का चिन्तन 'गीतातत्त्वाङ्क'में आठवें अध्यायके नवें और तेरहवें अध्यायके सतरहवें श्लोकका विस्तृत अर्थ देखकर तदनुसार करना चाहिये।

प्र० ५०—श्रद्धा और विश्वास अडिग, अचल एवं पुष्ट किस प्रकार बने रह सकते हैं ?

उ०—भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, लीला, धाम, महिमा, श्रद्धा और प्रेमके विषयका महापुरुषोंद्वारा बार-बार श्रवण या सच्छास्त्रोंका मननपूर्वक स्वाध्याय करनेसे श्रद्धा और विश्वास-की दृढ़ता हो सकती है।

प्र० ५१—विश्वकी विचित्र कारीगरी भगवान्‌की लीलासे ही हुई है या प्राणियोंके कर्मफलसे ?

उ०—विश्वकी नाना प्रकारकी रचनामें प्राणियोंका कर्मफल ही प्रधान है। ईश्वरकी लीला तो निमित्तमात्र है।

प्र० ५२—जगत्‌की सुन्दरता मनको मोहित करके फिर विरह देती है। यह स्वभावतः है या हमारे मिथ्या मोहसे ?

उ०—इसमें मिथ्या मोह ही हेतु है।

प्र० ५३—किसी प्राणिविशेषमें आसक्तिपूर्वक प्रेम होना प्राचीन संस्कारसे है या इसमें मनका मोहरूप दोष एवं मनकी दुर्निग्रहता हेतु है ?

उ०—इसमें अन्तःकरणके संस्कार, मनकी दुर्निग्रहता और मोह तीनों ही हेतु हैं।

प्र० ५४—कर्मबन्धन कैसे मिटे ?

उ०—परमात्माके तत्त्वका यथार्थ ज्ञान एवं परमात्माकी प्राप्ति होनेसे कर्मका बन्धन मिट सकता है।

प्र० ५५—क्रोध और विषाद त्यागनेके क्या उपाय हैं ?

उ०—निष्काम प्रेमभावसे भगवान्‌के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, सत्सङ्ग और दुखियोंकी सेवा करनेसे तथा प्रत्येक घटनामें भगवान्‌का विधान माननेसे क्रोध और विषादका अत्यन्ताभाव हो सकता है।

प्र० ५६—जीवनमें अनर्थ, बड़ी-बड़ी गलतियाँ एवं किसी-का अहित न हो, इस भावसे भगवान्‌से प्रार्थना करनेपर क्या भगवान् उनका नाश कर सकते हैं ?

उ०—निश्चय कर सकते हैं।

प्र० ५७—भगवान्‌की कृपाका अनुभव कैसे हो ?

उ०—जो कुछ विना इच्छा आकर प्राप्त हो जाय उसमें ईश्वरका दयापूर्ण विधान समझकर प्रसन्न रहनेसे तथा भजन और सत्पुरुषोंका सङ्ग करनेसे भगवान्‌की कृपाका अनुभव हो सकता है।

प्र० ५८—हिंसा तो सभी प्राणियोंसे होती है। क्या ईश्वर इससे अलग है ?

उ०—आरम्भमात्र ही दोषयुक्त होनेके कारण किसी-न-किसी रूपमें हिंसा सभी प्राणियोंसे हो ही जाती है, किन्तु ईश्वर हिंसासे अत्यन्त दूर हैं तथा ईश्वरके कर्म दिव्य और अलौकिक होनेके कारण वे कर्म कर्म ही नहीं हैं, इसलिये उनके कर्मोंमें प्रतीत होनेवाली हिंसा, हिंसा ही नहीं है क्योंकि उनका किसी भी

कर्ममें आसक्ति और कर्तापनका अभिमान नहीं है। इसका विस्तृत विवरण 'गीता-तत्त्वाङ्क'के चौथे अध्यायके १३ और १४ वें श्लोकोंके अर्थमें देखना चाहिये।

प्र० ५९–क्या सूरसागरमें कहीपर ऐसा पद आया है कि संवत् २००० के पश्चात् ८० वर्षके लिये सत्ययुगकी झलक होगी तथा रावणका पुत्र मेघनाद विश्वमें एकछत्र राज्य करेगा ?

उ०—पता नहीं।

प्र० ६०–भौतिक विज्ञान और ईश्वरेच्छा—इनमें क्या सम्बन्ध है ?

उ०–कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्र० ६१–मुझे बायें कानसे तो घण्टानाद-जैसा शब्द सुनायी देता है, किन्तु दाहिने कानसे अभ्यास करनेपर भी सुनायी नहीं देता, सो इसमे क्या कारण है ?

उ०—मालूम नहीं।

प्र० ६२–शुकदेवजीकी तरह जो योगी इस प्रपञ्चसे अलग होकर विचरण करते हैं, वे लोमशजी अथवा काकभुशुण्डिजीकी तरह एक जगह रहकर भजन क्यों नहीं कर सकते ?

उ०—यह प्रश्न युक्तिसंगत नही है क्योंकि शुकदेवजी भी एक जगह रहकर भजन किया करते हैं।

प्र० ६३–मैं यह चाहता हूँ कि जैसे जल बिना मछलीकी दशा होती है, वैसी भगवान्‌के वियोगमें मेरी दशा हो जाय, सो कैसे हो ?

उ०–परम प्रेम और अनन्य श्रद्धा होनेसे इस प्रकारकी दशा हो सकती है।

[५६]

प्रणाम । आपका पत्र यथासमय मिला । आपने मुझे 'पूज्य संत महाराज' आदि लिखा, सो ऐसा लिखकर आपको मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये । मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ । हाँ, मेरी यह चेष्टा अवश्य रहती है कि लोग भगवान्‌की ओर प्रवृत्त हों, भगवान्‌में प्रेम बढ़े, भक्ति बढ़े, सदाचारका प्रचार हो, सात्त्विक वृत्तियोका विकास हो । इसलिये जो भी भगवान्‌की भक्तिमें प्रवृत्त होते है और पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे मुझे प्रिय लगते हैं । हमारा-आपका सम्बन्ध मित्रताका ही होना चाहिये ।

मैंने आपको पहले भी लिखा था और पुनः लिख रहा हूँ कि माता-पिताकी आज्ञामें रहकर ही साधन-भजन करना चाहिये और इधर-उधर भागकर नही जाना चाहिये । माता-पिताके आदेशकी अवहेलना करके काशी जानेकी अपेक्षा उनकी आज्ञा और आदेश मानकर घरमें रहकर साधन-भजन करना अधिक श्रेयस्कर है ।

आपको विद्याध्ययन आदिसे समय कम मिलता है और इसलिये आप पूर्णतः सारा समय साधन-भजनमे नहीं लगा सकते—इस वातको लेकर मनको दुखी नहीं कर लेना चाहिये । आपको अध्ययनसे जितना भी अवकाश मिले, उसे अवश्य साधन-भजनमें लगाना चाहिये और शेष समयमें निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते हुए अपना कार्य करना चाहिये । स्वयं भगवान्‌ने (गीता अध्याय ८, श्लोक ७ में) कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

'इसलिये अर्जुन ! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर. इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

मुख्यबुद्धिसे भगवत्स्मरण और गौणबुद्धिसे अन्य सारे कार्य किस प्रकार किये जा सकते हैं, इसके लिये विशेष युक्तियाँ गीतातत्त्वाङ्कमें आठवें अध्यायके सातवें श्लोकपर लिखित व्याख्यामें देखनी चाहिये । उससे आपका पूरा समाधान हो जानेकी आशा है । आपको सवा दो घंटेका जो समय मिलता है, उसका अधिक-से-अधिक उपयोग करना चाहिये और शेष समयमें भगवानका स्मरण करते हुए ही अपना निर्दिष्ट कर्तव्य करना चाहिये ।

हरिनाम विना मनुष्य वैसा ही है, जैसा दीपकके विना मन्दिर—आपका यह लिखना सर्वथा सत्य है । अतएव आप नाम-साधनामें अधिक-से-अधिक लगिये ।

आप 'राम-कृष्ण-हरि'—नामका जप करते हैं—यह बड़ी उत्तम बात है । इसे अधिक-से-अधिक बढ़ाइये । इन्हीं नामोंका यह मन्त्र है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इस मन्त्रमें 'राम-कृष्ण-हरि'—इन नामोंके सोलह नाम आते हैं । कलिसन्तरणोपनिषद्में इस महामन्त्रकी बड़ी महिमा कही गयी है । अस्तु, आप इसी महामन्त्रका आश्रय लें तो बहुत उत्तम होगा ।

आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) इस कलियुगमें भगवान्‌का दर्शन अवश्य हो सकता है—भगवत्कृपासे, भगवत्प्रेमसे।

(२) भगवान्‌के चौबीस अवतारोंमें श्रीराम और श्रीकृष्ण इसलिये मुख्य हैं कि इनके द्वारा साधुओंका उद्धार, पापियोंका संहार और धर्मकी स्थापना विशेषरूपमें हुई। भगवान्‌के अवतारका यही उद्देश्य है और इन उद्देश्योंकी पूर्ति विशेषरूपसे राम और कृष्णके अवतारोंमें ही हुई। गीता अध्याय ४ श्लोक ८ देखिये—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

इस श्लोकपर 'गीतातत्त्वाङ्क'में प्रकाशित भाष्य देखना चाहिये।

(३) नाम जपते-जपते भगवान्‌का दर्शन अवश्य प्राप्त होता है। नाम जपते-जपते भक्त प्रेमसे भगवान्‌में तन्मय—तल्लीन हो जाता है। उदाहरणके लिये श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका उदाहरण बहुत उत्तम है।

(४) प्रह्लाद, शुकदेवकी तरह हमें भी भगवान् मिल सकते हैं, यदि हम उनकी तरह दत्तचित्त होकर साधना करें। भगवान्‌की दया और कानून सबके लिये समान हैं, फिर हमलोग उनके शरण होकर प्रयत्न करें तो दर्शन क्यों नहीं हो सकता? क्योंकि उनकी कृपा तो नित्य सबके लिये समान है।

(५) मल-मूत्रत्याग करते समय भगवान्‌के राम-कृष्ण-हरि आदि नामोंका उच्चारण मन-ही-मन कर सकते हैं—वैदिक मन्त्रोंका नहीं। वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणके लिये सर्वथा शुद्ध रहना अनिवार्य है।

(६) 'हरे राम०' मन्त्रका प्रेमसे जप करनेपर भगवान् अवश्य मिल सकते हैं। कब मिलते हैं, यह तो भगवान् ही जानते हैं। भक्तकी समस्त हितकर इच्छाओंको भगवान् पूरा करते ही हैं।

(७) केशव विष्णुभगवान्का ही नाम है।

(८) भगवान्के कल्कि अवतारमें चार लाख वर्षसे भी अधिककी देर है।

(९) यह बतलाना कठिन है कि गीताप्रेसमें किसीको भगवान्का साक्षात्कार हुआ है या नहीं। जिसे साक्षात्कार होता है, वह बतलाता नहीं और जो बतलाता है, उसपर श्रद्धा नहीं होती। यह तो स्वसंवेद्य विषय है। इसलिये कहना कठिन है कि किसे ईश्वर-साक्षात्कार हुआ है, किसे नहीं।

(१०) काशीमें मरनेसे अवश्यमेव मुक्ति होती है, क्योंकि इसमें शास्त्रवचन प्रमाण है। शास्त्रोंमें श्रद्धालुओंको विश्वास रखना चाहिये।

(११) मृत्युके समय नामका स्मरण या स्वरूपका ध्यान—दोनों या दोनोंमें कोई एक भी हो तो मुक्ति हो जाती है।

(१२) अनन्य भक्ति करनेवाला जिस प्रकारकी मुक्ति चाहता है, वैसी ही मुक्ति उसे मिलती है।

(१३) गायत्रीका जप सब प्रकारसे पवित्र होकर करना चाहिये। भगवन्नामका जप किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है।

(१४) मिथ्याकी अपेक्षा मौन उत्तम है। मौनसे भी सत्य बोलना श्रेयस्कर है।

(१५) सच्चिदानन्द परमात्माके ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि अनेक रूप हैं। अतः विष्णु ही शिव हैं, शिव ही विष्णु हैं। इनमें अभेदबुद्धि रखते हुए अपने इष्टदेवमें अनन्यभाव रखना चाहिये और उसीकी उपासना करनी चाहिये।

[५७]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार विदित हुए। आपने एक संन्यासीके विषयमें लिखा सो मैं उनके व्यक्तित्वसे तो परिचित नहीं हूँ; परन्तु आपके समाचारोंसे यह बात समझमें आती है कि वे भी सम्भवतः कोई वैसे ही बने हुए संन्यासी होंगे, जो धर्मप्रचारके बहाने अपनी भोगवासनाओंकी पूर्ति करनेकी इच्छासे घूमा करते हैं।

गीता-जयन्तीके उत्सवपर कुछ लोगोंने उनको व्याख्यान देनेके लिये बुला लिया, यह अवश्य गलती हुई। आजकलके अन्धश्रद्धालु भोले भाई प्रायः इसी तरहकी भूल कर बैठते हैं। यदि वे हमारे ऋषि-मुनियोंद्वारा रचित आर्ष ग्रन्थोंका भाव समझते होते तो ऐसी गलती नहीं करते।

आपने लिखा कि कितने ही गीताप्रेसकी पुस्तकें पढ़नेवाले भाइयोंने भी उक्त संन्यासीको अपना गुरु बनाया है, इससे तो यही समझमें आता है कि वे लोग हमारी प्रार्थनाका और गीताप्रेसकी पुस्तकोंका भाव अभीतक नहीं समझ पाये हैं। समझ लेते तो ऐसी गलती नहीं करते।

आपने पूछा कि ऐसे संन्यासीको जिन्होंने गुरु मानकर उनसे गुरु-मन्त्र ले लिया है, वे लोग क्या उस गुरुका त्याग

कर सकते है। इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि अपनी गलतीका सुधार करनेके लिये मनुष्य सदा ही स्वतन्त्र है। वास्तवमें गुरु तो वही है, जो अपने शिष्यको संसार-चक्रसे निकालकर कल्याणकी ओर अग्रसर करे। नही तो फिर वह गुरु ही कैसा? कालनेमि भी तो हनुमान्‌जीका गुरु वना था। क्या उन्होंने उसका कुछ मुलाहिजा रक्खा?

आपने पूछा कि दूसरा कोई भाई उनको गुरु वनानेके लिये पूछे तो उसको क्या कहना चाहिये। इसका यह जवाव है कि ऐसे भोले भाईको सच्चे गुरुओंके लक्षण और सदाचारसे परिचय कराकर वैसे गुरुकी खोज करनेके लिये कहना चाहिये और ढोंगियोसे वचनेके लिये सावधान कर देना चाहिये।

संन्यासीजीके उपदेशका जो अंश आपने क्रमसे लिख भेजा है, उसका क्रमशः उत्तर इस प्रकार है—

(१) प्रारब्धके अनुसार जो कुछ प्राप्त हो, उसे भोग लेनेमें पापका तो कोई सवाल ही नही उठता, क्योंकि प्रारब्धभोग तो पुण्य और पापरूप पूर्वकृत कर्मोंका फल है, उसे भोगनेके लिये तो प्राणीमात्र वाध्य है, परन्तु इसमें समझनेकी वात इतनी ही है कि प्रारब्ध-भोगके निमित्त मनुष्य निषिद्ध आचरण करनेके लिये वाध्य नही है। अपने वर्णाश्रमोचित विहित कर्मोंका आचरण करते हुए ही उसे प्रारब्धके भोग अपने-आप मिलेंगे। उस सुख-दुःखरूप प्रारब्धभोगको राग-द्वेषके विना भोगते रहकर परमात्माको प्राप्त करनेके साधनमें लगे रहना ही मनुष्यका कर्तव्य है। पुण्यकर्मके फलरूप सुख-भोगोंका त्याग करनेमें मनुष्य उसी प्रकार स्वतन्त्र है, जैसे धनी पुरुष अपने

धनका त्याग करनेमें । मनुष्य-जन्मका महत्त्व भोगोंका त्याग करनेमें ही है। इन्द्रियोंके विषयोंको भोगनेके लिये मनुष्य-जन्म नहीं है। और यह कहना सर्वथा निराधार है कि 'बिना विचार किये ही भोगोंको भोग लेना चाहिये, नहीं तो फिर दूसरे जन्ममें आकर उन्हीं भोगोंको भोगना पड़ेगा।' क्योंकि शास्त्रोंमें कहीं भी विषय-भोगोंको मुक्तिका साधन नहीं बतलाया है, बल्कि जगह-जगह उनको कल्याणमें बाधक बतलाकर साधकके लिये बार-बार उनका त्याग करनेको कहा गया है। मुक्ति तो त्यागसे ही मिलती है, भोगोंसे नहीं; यह अटल सिद्धान्त है। न्यायोपार्जित भोगोंका भी जितना अधिक-से-अधिक त्याग कर दिया जाय, उतना ही महत्त्वकी बात है । संन्यास-आश्रममें तो त्यागकी ही प्रधानता है।

(२) यह कहना भी शास्त्रविरुद्ध है कि विरक्त संन्यासीको बहुमूल्य सुन्दर वस्त्र धारण करनेका, सोने-चाँदीके बरतनोंमें भोजन करनेका, गद्दोंपर सो-बैठकर आराम करनेका और बहुमूल्य सवारियोंमें बैठकर विचरनेका अधिकार है एवं संन्यासी स्त्रियोंको भी अपनी चेली बना सकता है । क्योंकि शास्त्रोंमें जगह-जगह इन सब बातोंका डंकेकी चोट निषेध किया गया है। अतः जो पुरुष स्वार्थवश इन बातोंका प्रचार करता है, वह धर्मप्रेमी जनताको धोखा ही देता है।

अपनेको ईश्वरकोटिका संन्यासी बतलाना अहङ्कारकी बात है। ज्ञानीसे कभी दुराचार होता ही नहीं, उसके आचरण तो दूसरोंके लिये आदर्श हुआ करते हैं।

(३) संन्यासी दो ही प्रकारके नहीं, बहुत प्रकारके

होते हैं, परन्तु किसी भी संन्यासीका महत्त्व ऐश-आराम भोगनेमें नहीं है। भौतिक प्रपञ्चमें फँसना तो सभी प्रकारके संन्यासियोंके लिये कलङ्क है। जिस संन्यासीमें जितना त्याग और वैराग्य अधिक है, वह उतना ही ऊँची कोटिका है। धन-ऐश्वर्यसे संन्यासीका बड़प्पन नहीं, बल्कि पतन है।

(४) उनका यह कहना तो सर्वथा दुःसाहस, दुराचार और शास्त्रविरुद्ध है कि 'मैं ज्ञानी हूँ, मैंने परीक्षाके लिये कई वार पंद्रह-सोलह वर्षकी जवान लड़कियोंके साथ उपस्थ इन्द्रियका स्पर्श कराया, इसपर भी मेरे मनमें किसी तरहका विकार उत्पन्न नहीं हुआ—कामकी जागृति नहीं हुई। जिसका मन हो परीक्षा करके देख लें।'—इत्यादि, सच्चे ज्ञानी महापुरुष न तो इस तरहके वचन कहते हैं और न ऐसा अशास्त्रीय गंदा व्यवहार ही करते हैं। यह आचरण तो अत्यन्त दूषित, घृणित और महान् दुराचारत्वका द्योतक है।

(५) यह कहना सर्वथा सत्य है कि मनुष्य गुरुकी कृपासे भगवान्‌को पा सकता है और साधकका साधन गुरुकी सेवा करना ही है, क्योंकि सेवामें आज्ञापालनकी प्रधानता है और उसके विना कोई भी साधक अपने लक्ष्यतक नहीं पहुँच सकता। परन्तु इसमें समझनेकी वात यह है कि जिन गुरुओंका उपर्युक्त महत्त्व है, वैसे गुरु वड़े दुर्लभ हैं। जो लोग गुरुका स्वाँग धारण करके गुरुडमका प्रचार करते फिरते हैं, उन लोगोंका यह महत्त्व नहीं है।

(६) यह कहना शास्त्रोंके और खास करके गीताके सर्वथा विरुद्ध है कि साकार उपासनासे भगवान्‌की प्राप्ति होकर

फिर जन्म होता है। इसके लिये आठवें अध्यायके श्लोक १४ से १६ देखने चाहिये।

(७) उनका यह कहना सर्वथा मिथ्या है कि गीताप्रेसकी गीताका अनुवाद उनका किया हुआ है। गीताप्रेससे न तो उनका कदापि कोई सम्बन्ध ही है और न गीताप्रेस उपर्युक्त सिद्धान्तोंसे किसी भी अंशमें सहमत है। गीताप्रेसके अनुवादमें तो उपर्युक्त दम्भाचरणका सर्वथा विरोध किया गया है।

उपाय पूछनेवालोंसे आप उपर्युक्त संन्यासीके सिद्धान्तोंका विरोध करते हैं सो उचित ही है, ऐसा ही करना चाहिये। परन्तु विरोध करते समय इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि अपने मनमें कहीं अभिमान या द्वेष अपना स्थान न बना ले और दूसरोंके दिलपर किसी तरहकी चोट न पहुँचे।

आपने लिखा कि बहुत-से गीताका अभ्यास करनेवाले भाई भी इन सिद्धान्तोंपर चलते हैं; सो यह बड़े आश्चर्यकी बात है। यदि थोड़ा-सा भी गीताके सिद्धान्तके साथ इन सिद्धान्तोंका मिलान किया जाय तो ये कपोलकल्पित सिद्धान्त तनिक भी नहीं टिक सकते। उन भाइयोंके माता-पिता अपने लड़कोंकी शिकायत करते हैं, सो तो ठीक ही है। दुराचारकी शिकायत तो होनी ही चाहिये।

संन्यासीजीने अपने सिद्धान्तके विरोधियोंको बहुत कुछ भला-बुरा कहा, यह उनकी इच्छा है, पर क्या किया जाय। स्वार्थवश प्रायः बहुत लोग ऐसी बातें किया करते हैं। आपने दुःख नहीं माना सो बहुत ही अच्छा किया। जिन भाइयोंको उनकी बातोंसे दुःख हुआ, उनको भी यही समझाना चाहिये

कि दुःख करनेसे कोई लाभ नहीं है । असली बात समझकर जो उचित हो, शान्तिके साथ वही करना चाहिये ।

गीता-धर्ममण्डलमें परस्पर प्रेमभाव बढ़े, विरोध न हो—इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये । दो पार्टियाँ न होना अच्छा है । आपसे जहाँतक हो सके, मतभेद मिटाकर समझानेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

आपने पूछा कि 'क्या विरोध न करके दोनों स्थानोंमें सत्सङ्ग कर लिया करूँ ?' इसके उत्तरमें यह लिखना है कि जिस जगह सदाचार और सत्-सिद्धान्तके अनुकूल विचार होता हो, उसीका नाम सत्सङ्ग है । अतः जहाँ ऐसी व्यवस्था हो, वहाँ तो जाना ही चाहिये । रही वहाँ जानेकी बात, जहाँ दोनों तरहकी बातें होती हैं, इसके विषयमें यह कहना है कि यदि वहाँ ऐसी बातोंका विरोध करके लोगोंको समझानेसे सच्ची बात उनकी समझमें आनेकी उम्मीद हो और आप शान्तिपूर्वक बिना द्वेषभावके उन्हें समझानेका परिश्रम कर सके तो वहाँ जाना भी बहुत अच्छा है । परन्तु यदि यह बात न हो और अपने साधनमें विघ्न आता हो तो वहाँ जानेमें कोई लाभ नहीं है ।

सबका यथायोग्य हरिस्मरण समझना चाहिये । श्रीस्वामीजी आजकल यही है । गीतातत्त्वाङ्कके संशोधनका काम हो रहा है । और भी कितने ही सत्सङ्गी भाई यहाँ है, सभी प्रसन्न हैं ।

[५८]

महोदय ! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र यथासमय

मिला । समाचार ज्ञात हुए । आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है--

(१) मनुष्यके द्वारा जो पाप-पुण्य किये जाते हैं, वे उसके स्वभावकी प्रेरणासे यानी प्रकृतिके अनुसार होते हैं । जिसकी प्रकृति शुद्ध-सात्त्विक है, उसके द्वारा अच्छे कर्म होते हैं और जिसकी प्रकृतिमें रजोगुण-तमोगुण अधिक हैं, उसके द्वारा पाप-कर्म अधिक होते हैं । चेष्टा करनेसे मनुष्य अपनी प्रकृतिका सुधार कर सकता है । भगवान्‌के नाम-जपसे, सदाचारी संत पुरुषोंके सङ्गसे, श्रेष्ठ पुरुषोंके वचनोंका श्रवण और अध्ययन करके, उनके अनुसार साधन करनेसे तथा भगवान्‌की कृपासे प्रकृतिका सुधार शीघ्र हो सकता है । पाप-कर्म भगवान् कराते हैं, यह मानना सर्वथा भूल है । भगवान् तो हर प्रकारसे हमलोगोंको पापोंसे बचानेमें सहायक हैं । पाप करते समय भी हमें चेतावनी मिलती रहती है । पापका फल दुःख भुगताकर भी भगवान् चेतावनी देते हैं । इतनेपर भी मनुष्य अपनी आदत और आसक्तिके वशीभूत होकर पापोंमें प्रवृत्त रहता है । इसमें भगवान्‌का क्या दोष है ?

सब कुछ भगवान्‌की दयासे होता है । भगवान्‌की कृपाके बिना कुछ भी नहीं हो सकता । भगवान् नट हैं, हमलोग अपना-अपना अभिनय दिखानेके लिये यहाँ आये हैं । यह मानकर भगवान्‌के आज्ञानुसार अपने-अपने स्वाँगका पूर्णरूपसे खेल दिखाना और उसमें आसक्त होकर सुखी-दुखी न होना--ऐसा करना तो बहुत ही उत्तम है । इसमें पापकर्मकी बात कहाँ है ? ऐसा माननेवाला तो भगवान्‌की आज्ञाका ही पालन करेगा । वह भगवान्‌के विरुद्ध निषिद्धाचरण कैसे कर सकता है ? ऐसे भक्त

क्या करते हैं, उनका कैसा भाव होता है ? इसे देखना हो तो गीतातत्त्वाङ्क अध्याय १२ श्लोक १३ से २० तक देखिये।

अजामिल पहले भगवान्‌का भक्त था। फिर कुसङ्गसे पापमें प्रवृत्त हो गया। अन्त समयमें अपने पुत्रका नाम नारायण उच्चारण करते-करते उसका लक्ष्य भगवान्‌की तरफ चला गया। इसी कारण भगवान्‌ने उसको यमदूतोंसे बचाया और पुनः उसे अपनी भक्तिमें लगाकर उसका उद्धार किया। अन्तकालके स्मरणका विशेष महत्त्व है। (गीता अध्याय ८ श्लोक ५ देखना चाहिये) भगवान्‌की कृपासे विगड़ी बन जाती है, यह सर्वथा सत्य है और तुलसीदासजीका भी यह कहना बिल्कुल यथार्थ है कि 'जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करइ सब कोई ॥' परन्तु भगवान्‌की दयाका प्रकाश भगवान्‌पर भरोसा करके उनकी शरण जानेपर ही होता है, अन्यथा उसका अनुभव नहीं होता।

(२) मुझे भगवान्‌का साक्षात्कार हुआ है या नहीं—यह व्यक्तिगत बात है। इस प्रश्नका उत्तर देनेमें मैं लाचार हूँ।

(३) भजन-कीर्तनमें मन लगनेका उपाय पूछा, सो जिन सज्जनोंका भजन-कीर्तनमें मन लगता है, जो भगवान्‌के प्रेमी भक्त हैं, उनका सङ्ग करनेसे, उनके द्वारा भगवान्‌के गुण और प्रभावकी बात सुननेसे एवं पहले-पहल मन न लगनेपर भी भजन-कीर्तनका अभ्यास करते रहनेसे तथा बार-बार भगवान्‌से इसके लिये प्रार्थना करनेसे संसारमें वैराग्य और भगवान्‌में प्रेम होकर भजन-कीर्तनमें मन लग सकता है।

आपका मन जो यह चाहता है कि हर समय भगवान्‌का भजन मन-ही-मन होता रहे, यह बहुत ही अच्छी चाह है। यह

इच्छा जितनी प्रबल हो उतनी ही अच्छी है। इसकी वृद्धि होनेसे सहज ही मन भगवान्‌के भजनमें लग सकता है। इसी तरह भगवान्‌का ध्यान भी अपने-आप हो सकता है। बस, इस चाहको ही बढ़ानेकी जरूरत है। फिर तो सब काम अपने-आप बन जायगा। इसमें निराश होनेकी कोई बात नहीं है।

आपकी उम्र चौदह सालकी है। आप एकान्तमें रहकर भजन करना चाहते हैं, सो यह मन बड़ा पाजी है, हर तरहसे धोखा दिया करता है, अतः अभी ऐसा न करके घरमें रहते हुए और घरका काम-काज भी यथाधिकार करते हुए आपको भजनका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। साथ ही भगवान्‌के भजन-ध्यानकी इच्छाको उत्कट बनाना चाहिये। संसारसे प्रेम हटाकर भगवान्‌में प्रेम जोड़ना चाहिये। रात्रिमें डर लगता है, यह आपकी गलती है—भगवान् सब जगह मौजूद हैं, फिर डर किस बातका ?

आपने लिखा कि भगवान्‌की गोदमें बैठना असम्भव है, सो असम्भव नहीं है। भगवान् तो अपने भक्तको गोदमें बैठानेके लिये हर वक्त तैयार हैं।

आपने लिखा कि कलहका बाजार बहुत गरम है, इससे हृदय बिंधता रहता है। सो भगवान्‌में प्रेम होनेपर कलहकी ज्वाला अपने-आप शान्त हो सकती है।

आपने लिखा कि दुनियामें पापी-ही-पापी भरे पड़े हैं, सो ऐसा खयाल नहीं रखना चाहिये। दूसरोंके अवगुण न देखकर अपने ही अवगुणोंकी ओर देखना चाहिये और उनका सुधार करना चाहिये। दूसरोंके गुणोंकी खोज करनी चाहिये। यही

सुधारका रास्ता है। मेरी और भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारकी बड़ाई लिखी, सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। इस समय भी संसारमे विश्वासपूर्वक खोज करनेपर बहुत महात्मा और धर्मात्मा मिल सकते हैं। हमलोग तो साधारण मनुष्य हैं।

किसी मनुष्यने जो भगवान्के विषयमे आपको निराशाकी वात कही, सो उनकी गलती है। सम्भव है, वे इस विषयमें अनभिज्ञ हों। किसी जातिविशेषकी भाँति भगवान् धोखेवाज़ नहीं है। वे तो सर्वथा हमारे हितैषी है। ऐसे वेसमझ मनुष्यकी वात सुनकर आपको चिन्ता क्यों होनी चाहिये?

आपको ईश्वरका जो कुछ भरोसा है, उसे और भी बढ़ाना चाहिये। इस मार्गमे विश्वास ही सबसे वढ़कर सहायक है।

पीलीभीतमें श्रीहरिसंकीर्तनका उत्सव मनाया गया, सो वहुत ही अच्छा हुआ। अवसर न मिलनेके कारण मैं नहीं जा सका। वहाँकी जनता मुझे चाहती है, यह उन लोगोंके प्रेमकी वात है। मैं इसके लिये उनका आभारी हूँ।

(४) अच्छे और बुरे कर्मोंका फल इस लोकमे सुख और दुःखके भोगरूपमें मिलता है। इसके सिवा, लोकान्तरमें भी स्वर्ग और नरककी प्राप्ति होती है। दोनों तरहसे ही कर्मोंका भोग होता है।

(५) आत्मा नित्य है, शरीर नाशवान् है। शरीरका नाश होनेपर आत्माका नाश नहीं होता। शरीरका परिवर्तन हो जाता है।

जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्मोंका फल भोगनेके लिये जीवको नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। जवतक भगवान्से मिलना नहीं होता, तवतक इसका इस आवागमनके चक्रसे पिण्ड नहीं छूटता।

आपको जो 'हे नाथ नारायण वासुदेव, श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।' यह पद अच्छा लगता है और इसीका जप करनेकी आप चेष्टा करते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। इसी अभ्यासको खूब बढ़ाना चाहिये।

.. . .'से आपकी बातचीत हुई और उन्होंने जो आपसे कहा—वह बहुत ठीक है। भगवान् तो त्रिकाल सत्य हैं।

[५९]

महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। किसीको आशीर्वाद या सामर्थ्य देनेकी न तो मुझमें शक्ति है और न अधिकार ही है। मनके संशय, भ्रम और कुवासना तो भगवान्‌का भजन, ध्यान और सत्सङ्ग करनेपर भगवान्‌की दयासे ही नष्ट हो सकते हैं। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मुझसे प्रार्थना करनेसे ऐसी माँग पूरी [illegible] सकती। इसके लिये तो भगवान्‌से ही प्रार्थना करने चाहिये।

आपने लिखा कि ब्रह्मज्ञानी और ईश्वरमें कोई [illegible] है, सो जो कोई ब्रह्मज्ञानी हैं, उनको मेरा बार-बार न[illegible] ईश्वरकी बराबरी दूसरा कोई [illegible] नहीं कर सकता। [illegible] ईश्वर ही हैं। वे सर्वसमर्[illegible] [illegible] जो संतोंकी का वर्णन है और उनको [illegible] अधिक बताया [illegible] उसका अभिप्राय दूसरा [illegible] महत्त्व [illegible] महत्त्वको बढ़ानेके लिये है [illegible] दुर्लभ हैं।

आपके प्रश्नोंका [illegible] और शास्त्रके [illegible]

पर लिखा जाता है। अगर इससे आपके मनमें सन्तोष हो सके तो बड़ी अच्छी बात है।

(१) गुरु गोविन्दसिंहजीने जो यह कहा कि 'मुझे जो ईश्वर कहेगा, वह नरकमें पड़ेगा' यह बहुत ही उचित कहा है। महापुरुषोंको ऐसा ही कहना चाहिये। जो साधु अथवा भगवान्‌के भक्त कहलानेवाले लोग भगवान्‌की जगह अपने शरीरकी पूजा कराते हैं, वे वास्तवमें साधु, महात्मा या भक्त नहीं हैं। वे तो प्रत्यक्ष ही दम्भी और लोगोंको धोखा देनेवाले हैं। शास्त्रोंमें जो सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि करनेके लिये कहा गया है, वह बात दूसरी है। उसका यह अभिप्राय नहीं है कि माता-पिता, भाई-बहन और स्त्रीके साथ यथायोग्य व्यवहार भी मत करो। वेदान्त-शास्त्रका तो यह अभिप्राय है कि दृश्य जगत्‌को अध्यारोपित समझकर उससे आसक्ति हटाओ और एक ब्रह्मको ही सबका अधिष्ठान समझकर उसीका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करो। इसमें किसी व्यक्ति-विशेषको ईश्वरसे बढ़कर माननेकी बात नहीं है। गुरुको ईश्वरके समान माननेके लिये कहनेका खास अभिप्राय यही है कि उसके उपदेशको शिष्य श्रद्धापूर्वक काममें लावें। सच्चे संत न तो किसीसे पूजा कराते हैं और न ईश्वरकी बराबरी ही करते हैं। वे तो अपनेको सदा सबका सेवक ही समझते हैं। ईश्वरकी जगह अपने शरीरको पुजवाना तो स्वार्थी आदमियोंका काम है।

(२) आपने जिस दोहेका अर्थ पूछा और शङ्का की, वह किसी प्रामाणिक ग्रन्थका वचन तो है नहीं, साधारण वाणी है। लिखनेका भाव यह मालूम होता है कि 'गुरु-मन्त्रका त्याग करनेवाला दरिद्री हो जाता है। गुरुकी अवज्ञा करना उसे मारने-

आपको जो 'हे नाथ नारायण वासुदेव, श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।' यह पद अच्छा लगता है और इसीका जप करनेकी आप चेष्टा करते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। इसी अभ्यासको खूब बढ़ाना चाहिये।

· · ·····से आपकी बातचीत हुई और उन्होंने जो आपसे कहा—वह बहुत ठीक है। भगवान् तो त्रिकाल सत्य हैं।

[५९]

महोदय ! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। किसीको आशीर्वाद या सामर्थ्य देनेकी न तो मुझमें शक्ति है और न अधिकार ही है। मनके संशय, भ्रम और कुवासना तो भगवान्‌का भजन, ध्यान और सत्सङ्ग करनेपर भगवान्‌की दयासे ही नष्ट हो सकते हैं। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मुझसे प्रार्थना करनेसे ऐसी माँग पूरी नहीं हो सकती। इसके लिये तो भगवान्‌से ही प्रार्थना करते रहना चाहिये।

आपने लिखा कि ब्रह्मज्ञानी और ईश्वरमें कोई भेद नहीं है, सो जो कोई ब्रह्मज्ञानी हैं, उनको मेरा बार-बार नमस्कार है। ईश्वरकी बराबरी दूसरा कोई भी नहीं कर सकता। ईश्वर तो ईश्वर ही हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। रामायणमें जो संतोंकी महिमाका वर्णन है और उनको रामसे भी अधिक बताया गया है उसका अभिप्राय दूसरा है। उनका वह महत्त्व रामके ही महत्त्वको बढ़ानेके लिये है। वैसे संतोंके दर्शन दुर्लभ हैं।

आपके प्रश्नोंका उत्तर अपनी समझ और शास्त्रके आधार-

पर लिखा जाता है। अगर इससे आपके मनमें सन्तोष हो सके तो बड़ी अच्छी बात है।

(१) गुरु गोविन्दसिंहजीने जो यह कहा कि 'मुझे जो ईश्वर कहेगा, वह नरकमें पड़ेगा' यह बहुत ही उचित कहा है। महापुरुषोंको ऐसा ही कहना चाहिये। जो साधु अथवा भगवान्‌के भक्त कहलानेवाले लोग भगवान्‌की जगह अपने शरीरकी पूजा कराते हैं, वे वास्तवमें साधु, महात्मा या भक्त नहीं हैं। वे तो प्रत्यक्ष ही दम्भी और लोगोंको धोखा देनेवाले हैं। शास्त्रोंमें जो सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि करनेके लिये कहा गया है, वह बात दूसरी है। उसका यह अभिप्राय नहीं है कि माता-पिता, भाई-बहन और स्त्रीके साथ यथायोग्य व्यवहार भी मत करो। वेदान्त-शास्त्रका तो यह अभिप्राय है कि दृश्य जगत्‌को अध्यारोपित समझकर उससे आसक्ति हटाओ और एक ब्रह्मको ही सबका अधिष्ठान समझकर उसीका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करो। इसमें किसी व्यक्ति-विशेषको ईश्वरसे बढ़कर माननेकी बात नहीं है। गुरुको ईश्वरके समान माननेके लिये कहनेका खास अभिप्राय यही है कि उसके उपदेशको शिष्य श्रद्धापूर्वक काममें लावें। सच्चे संत न तो किसीसे पूजा कराते हैं और न ईश्वरकी बराबरी ही करते हैं। वे तो अपनेको सदा सबका सेवक ही समझते हैं। ईश्वरकी जगह अपने शरीरको पुजवाना तो स्वार्थी आदमियोंका काम है।

(२) आपने जिस दोहेका अर्थ पूछा और शङ्का की, वह किसी प्रामाणिक ग्रन्थका वचन तो है नहीं, साधारण वाणी है। लिखनेका भाव यह मालूम होता है कि 'गुरु-मन्त्रका त्याग करनेवाला दरिद्री हो जाता है। गुरुकी अवज्ञा करना उसे मारने-

के समान पाप है। गुरु-मन्त्रका त्याग करनेवाला सिद्ध भी नरकमें जाता है।' यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो भगवत्-प्राप्त सिद्ध महापुरुष होते हैं, वे स्वप्नमें भी नरकगामी नहीं हो सकते। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि वे गुरुमन्त्रका त्याग करें—ऐसी सम्भावना भी नहीं है; क्योंकि उनमें इसका कोई हेतु ही नहीं रहता। अतः यह कहना इस तरहके सिद्धोंके विषयमें समझना चाहिये, जो मामूली सांसारिक सिद्धियोंकी चमक-दमक दिखाकर अपने आपको सिद्ध-महात्मा प्रसिद्ध करके लोगोंको ठगते फिरते हैं। ऐसे पाखण्डी मनुष्य ही गुरुकी अवज्ञा करके गुरुसे अधिक अपनी पूजा करवानेके लिये अनेक प्रकारकी चेष्टा किया करते हैं। उनके लिये यह कहना उचित ही है, क्योंकि ऐसे पाखण्डियोंके लिये ही तो नरक बनाये गये हैं। सदाचारी मुमुक्षु कभी नरकमें नहीं जाता और वह भूलकर भी सच्चे गुरुका अपमान या अवज्ञा नही करता। हाँ, किसी पाखण्डीको पहले भूलसे गुरु मान लिया हो और पीछे पता चल गया हो, तो ऐसी हालतमें ऐसे दम्भी गुरुका तो त्याग करना उचित ही है। यह बात स्वयं श्रीहनूमान्‌जीने कपटसे साधु और गुरु बननेवाले कालनेमिको मारकर चरितार्थ कर दिखायी है।

(३) जिस प्रकार सगुण भगवान्‌की मूर्तिका भजन, ध्यान करनेका विधान है, उस प्रकार सुषुप्तिका ध्यान करना विधेय नहीं है। सुषुप्ति-अवस्था तो महान् तमोगुणी और अज्ञानावस्था है। उसका क्या ध्यान किया जाय? उस प्रकारकी वृत्ति बनानेसे तो मनुष्यका उलटा अधःपतन होगा। और गीतामें कहा है कि 'अधो गच्छन्ति तामसाः' (१४। १८)।

(४) परब्रह्म निर्गुण निराकार परमात्मा ही जड जगत्के रूपमे प्रतीत होता है—यह वात तो ज्ञानसे समझकर जडका वाध करके सर्वत्र परमात्मबुद्धि करनेके लिये कही गयी है सांसारिक व्यवहारके लिये नहीं। शास्त्रका उद्देश्य चेतनको जड, वनाना नही है, जडको ही वास्तवमें चेतन समझनेके लिये कहना है।

(५) आपका यह प्रश्न ठीक समझमें नहीं आता। सुषुप्ति-अवस्था तो कोई ध्यान करने योग्य वस्तु ही नही है। भगवान्की मूर्तिका ध्यान किया जा सकता है।

(६) किसी मनुष्यको प्रचलित प्रणालीके अनुसार गुरु वनाना सद्गति या ब्रह्म-प्राप्तिके लिये अनिवार्य नही है आजकलके जमानेमे सच्चे गुरुओंका अभाव-सा ही हो गया है। अधिकांशमें गुरुडम वढ़ानेवाले पाखण्डियोंकी ही भरमार है। ब्रह्मज्ञानका सम्वन्ध तो अन्तःकरणकी शुद्धिसे है। सवके गुरु तो परमपिता परमात्मा स्वभावसे ही हैं। उनका कभी अभाव होता नहीं। उनकी वाणी भी गीताजीमें और दूसरे-दूसरे शास्त्रोंमे भरी हुई है। उसपर परमश्रद्धा करके उसके अनुसार साधन करनेपर अपने-आप ही ब्रह्मज्ञान हो सकता है। यह वात जरूर है कि यदि सौभाग्यसे कोई सच्चे महात्मा सिद्ध पुरुष या ऊँचे दर्जेका साधक गुरुरूपसे प्राप्त हो जायँ तो साधनमे वहुत ही सुगमता हो जाती है और मनुष्य शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त कर सकता है। सद्गुरुकी सहायताके विना कुछ समय अधिक लग सकता है।

(७) आपने जो ब्रह्म-प्राप्तिके तीन उपाय लिखे, उनमेंसे

किसी एकके द्वारा या तीनोंके द्वारा भी ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। ब्रह्मज्ञान न तो केवल उपनिषद्, गीता, विष्णुसहस्रनामादि शास्त्रोंको पढ़नेमात्रसे होता है, न किसीको गुरु मानने या स्वीकार करनेसे होता है और न किसीके अनुमोदन करनेसे या केवल महावाक्य सुनानेसे ही होता है। वह तो गीता, उपनिषद् और संत महापुरुषोंके उपदेशपर श्रद्धा करके उसके अनुसार आचरण और साधन करनेसे, अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ही होता है। अतः मनुष्यको उचित है कि वह भजन, ध्यान, सेवा और सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक मन लगावे और परमात्माके चिन्तन-को कभी न छोड़े।

(८) अपने-आपको गुरु न माननेवाले और गुरु बननेके योग्य न बतानेवाले संतको कोई साधक अपने मनमें गुरु मानकर उनके उपदेशोंसे आध्यात्मिक लाभ उठाना चाहे, तो बड़ी खुशीसे उठा सकता है। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। यह साधककी श्रद्धाका विषय है। उसकी सच्ची श्रद्धा होगी और वह उस संतके कहनेके अनुसार तत्परतासे साधनमें लगा रहेगा तो बहुत लाभ उठा सकता है। यह रास्ता गलत नहीं है।

[६०]

महोदय! हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार मालूम हुए। इस समय यहाँ स्वर्गाश्रममें सत्सङ्ग चलता है। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

श्रीशालग्रामजीका पूजन एक साथ बहुत-सी मूर्तियाँ रखकर किया जा सकता है। इसका विधान पद्मपुराणके पाताल-

खण्डमें आया है। यह पूजन करनेवालेकी रुचिपर निर्भर है कि वह अपनी पूजामें कितनी ही मूर्तियाँ रक्खे।

शालग्रामजीमें कोई विष्णु, कोई राम, कोई नृसिंह, कोई कृष्ण और कोई गिरधर-गोपालकी भावना रखकर पूजा करते हैं, सो सभी उचित है, क्योंकि एक ही परमेश्वरके अनेक रूप हैं; अतः भक्त अपने किसी भी इष्टकी भावना शालग्रामशिलामें कर सकता है। ऐसा करना अनुचित नहीं है।

इसी तरह मन्दिरोंमें भी जिस देवताका वह खास मन्दिर हो, उसके सिवा श्रीशालग्रामजीकी भी पूजा की जाय तो कोई अनुचित नहीं है। इसपर जो आपत्ति करते हैं, उनकी भूल है।

शालग्रामशिलामें भगवान्‌की उपासना कबसे आरम्भ हुई—इसका कुछ पता नहीं है। इसे तो सदासे ही समझना चाहिये। तुलसी भगवान्‌की प्रिय वस्तु है, यह शास्त्रोक्त बात है। पुराणोंमें इसकी कथा दूसरी तरहसे पायी जाती है, परन्तु उसका रहस्य समझमें नहीं आता। अतः यही मानना उचित मालूम होता है कि यह भगवान्‌की प्रिय वस्तुओंमेंसे एक है, क्योंकि इसमे अधिक-से-अधिक सात्त्विक गुण भरे हुए हैं।

अन्य उपासक भी यदि शालग्राममें अपने इष्टदेवकी भावना करके उनका चरणोदक लें, तो मेरी समझमें कोई अनुचित बात नहीं है। विष्णुमें और परब्रह्म परमात्मामें कोई भेद नहीं है, साम्प्रदायिक कल्पनामें मेरा अनुराग नहीं है। वेद, स्मृति, इतिहास और पुराणोंमे एक ही ईश्वरका अनेक रूपमें प्रकट होना बताया गया है। अतः श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्रीविष्णु—इनमें किसी प्रकारके भेदकी कल्पना उचित नहीं मालूम होती।

वास्तवमें भगवान् भोगके भूखे नहीं हैं। वे तो भावना और प्रेमके भूखे हैं। उनका प्रेमी भक्त प्रेमपूर्वक जो कुछ भी पत्र-पुष्प-फल या जल उनको समर्पण करता है, उसे वे बड़े आदरसे आरोगते हैं। अतः यह कहना नहीं बनता कि बिना तुलसीदलके भगवान् भोग नहीं आरोगते। यह तो अपनी-अपनी श्रद्धाकी बात है। भगवान्‌ने तो विदुरके घर केलोंके छिलकोंका भोग भी बड़ी प्रसन्नताके साथ लगाया। फिर दूसरे भोगकी बात कौन कहे? यही तो भगवान्‌की विशेषता है। इस विषयपर गीतातत्त्वाङ्कमें नवें अध्यायके २६ वें श्लोककी टीका देखनी चाहिये। तुलसीदल भगवान्‌के चरणोंमें भी चढ़ाये जा सकते हैं और भोगमें भी सम्मिलित किये जा सकते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि जिन पत्तोंको चरणोंपर चढ़ा दिया जाय, उनको नैवेद्यमें नहीं देना चाहिये तथा एक बार चढ़ाये हुए पत्तोंको दुबारा नहीं चढ़ाना चाहिये।

माला और तिलकोंकी सभी बातें साम्प्रदायिक हैं। अतः इनके लिये इतना ही लिख देना यथेष्ट है कि जिसको जिस सम्प्रदायकी मान्यता हो, उसको उसीके नियमोंके अनुसार माला-तिलक आदि धारण करने चाहिये। सभी सम्प्रदाय अच्छे हैं। जो इन साम्प्रदायिक बातोंमें पड़ना न चाहे, वह स्वतन्त्र है।

भगवान् किसी एक सम्प्रदायके ठेकेमें बँधे नहीं हैं। उनकी दया सबपर समान है। जो कोई भी उनको प्रेमपूर्वक भजता है, वही उनको पा लेता है, फिर वह चाहे किसी भी वर्ण और आश्रममें रहनेवाला या किसी भी सम्प्रदायको माननेवाला और न माननेवाला क्यों न हो; तथा स्त्री, पुरुष, बालक या बूढ़ा किसी

भी अवस्थामे क्यों न हो। भगवान् तो उसके हृदयका विश्वास और प्रेम देखते हैं। उनको तो भावकी आवश्यकता है। उनके सामने ऊपरके बाहरी चिह्नोंकी कोई विशेष कीमत नही है।

विष्णु, महाविष्णु और राधावल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण—इनमें वस्तुतः कोई अन्तर नही है। किसीकी भी उपासना उस एक ही ब्रह्मकी उपासना है। और सबका एक ही फल है, इसमें भेद मानकर झगड़ा बढ़ाना गलती है।

आपने लिखा कि नाराज न होना, उत्तर अवश्य देना—सो इसमें नाराज होनेकी तो कोई बात ही नही है। आपने तो बहुत ही अच्छी बातें पूछी है।

तुलसी, शालग्राम और माला-तिलकका विषय 'कल्याण'में समालोचनाके तौरपर लिखना ठीक मालूम नहीं होता, क्योंकि किसी भी सम्प्रदायका खण्डन-मण्डन करके किसीके दिलको चोट पहुँचाना 'कल्याण'का उद्देश्य नही है। 'कल्याण' तो सभी साधकोको यथासाध्य सहायता करना ही अपना काम समझता है।

अनन्य उपासनावालोंको सन्ध्यादि नित्यकर्म भगवान्के आज्ञापालनके रूपमें अवश्य करने चाहिये।

[६१]

महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र गीताप्रेस, गोरखपुरके मारफत यथासमय मिला। समाचार विदित हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१ (क) संक्षिप्त हिंदी वाल्मीकीय रामायणका नवाह्निक पाठ अनुष्ठानके रूपमे करना मेरी समझमें विधिसङ्गत नहीं है।

किसी खास कार्यके लिये नियमित पाठका अनुष्ठान तो मूल संस्कृत रामायणका ही होना चाहिये। वही शास्त्रानुकूल है।

(ख) जिनको संस्कृत ठीक तरहसे समझमें आती है, उनको जितना लाभ संस्कृत रामायणसे होता है, उतना लाभ तो इसके श्रवण-पठनसे नहीं होगा। परन्तु जो लोग संस्कृत नहीं समझते, भगवान्के चरित्रोंमें जिनका प्रेम है और जो यह जानना चाहते हैं कि श्रीवाल्मीकिजीने भगवान्के चरित्रोंका वर्णन किस प्रकार किया है, उनके लिये यह ग्रन्थ अवश्य ही बहुत लाभप्रद है। इसका पाठ करना और सुनना-सुनाना तो किसी अंशमें संस्कृतका भाव नहीं समझनेवालोंके लिये मूल ग्रन्थकी अपेक्षा भी अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता है, क्योंकि पूरी रामायणका विस्तार बहुत है। काव्य-ग्रन्थ होनेके कारण उसमें प्रकृतिकी शोभा और युद्धका वर्णन भी विस्तारसे आ जाता है। इसमें जो विषय विशेष उपयोगी नहीं समझे गये, वे छोड़ दिये गये हैं। अतः इसके पठन और श्रवणसे थोड़े समयमें ही भगवान्की मुख्य-मुख्य लीलाओंका ज्ञान सहजमें ही हो जाता है—यह इसकी विशेषता है।

(ग) इस प्रश्नका उत्तर कुछ तो ऊपरके उत्तरमें आ ही जाता है। रही यह बात कि यह किस बातमें कम है, सो सकाम अनुष्ठानकी जो विधि सांसारिक फलोंके लिये शास्त्रोंमें बतायी गयी है, उसमें इसका दर्जा कम हो सकता है।

(२) वाल्मीकीय रामायणके पाठ-श्रवणका सर्वोत्तम महीना पूछा, सो मेरी रायमें तो जिस भाईकी जिस महीनेमें इसका पठन, श्रवण करनेकी लालसा हो, उसके लिये वही

सर्वोत्तम है; क्योंकि भगवान्‌के चरित्र सुनने और पढ़नेका मौका भगवान्‌की ही दयासे मिलता है।

(३) पाठकर्ता पण्डित यदि निष्कामभावसे, भगवत्प्रेमसे ही कथा सुनानेवाला हो, तब तो गरीब-श्रद्धालु श्रोताको द्रव्य देनेकी कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि भगवान्‌की कथाका बदला धनसे थोड़े ही चुकाया जा सकता है। यदि पाठ करनेवालेकी यही जीविका हो और उसकी कुछ सेवा करनी हो तो अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ पत्र-पुष्प दे सके, दे देना ही यथेष्ट है। अधिक भार तो धनिकोंपर ही रहना चाहिये।

(४) (क) ग्रन्थको ऊँचे आसनपर रखकर पढ़ना ग्रन्थका सम्मान है। इससे ग्रन्थपर प्रेम और श्रद्धा बढ़ती है। अतः इसे अनिवार्य समझना ही अच्छा है।

(ख) इसका उत्तर ऊपर आ गया है।

(ग) हाथमें पुस्तक रखकर पाठ करना निष्फल तो नहीं हो सकता, परन्तु किसी आसनपर रखकर भक्ति-भावसे पाठ करना अधिक लाभप्रद अवश्य है।

(घ) इसका उत्तर (ग) में आ गया, अतः यह प्रश्न नहीं बनता।

(५) किसी अनुष्ठानमें सामूहिक रूपसे स्त्री और पुरुषोंका एक साथ सम्मिलित होकर बैठना और पाठ करना—मेरी समझमें ठीक नहीं है। स्त्रियोंको स्त्रियोंके समुदायमें और पुरुषोंको पुरुषोंके समुदायमें बैठना अच्छा है।

(६) पाठके निश्चित दिनोंके बीचमें यदि किसी कारणवश स्थान, समय अथवा दोनोंका परिवर्तन करना ही पड़े तो किया

जा सकता है। ऐसा करनेसे मनमें थोड़ा विक्षेप होता है। क्षति या दोष—जो कुछ समझिये, आता है। अतः यदि परिवर्तन न करनेसे ही काम चल सके, तो परिवर्तन न करना ही अच्छा है। और कोई बात नहीं, प्रधानता तो श्रद्धा-प्रेमकी है, समय और स्थानकी नहीं। यदि स्थान और समयका परिवर्तन करनेसे श्रोता और वक्ताको अधिक शान्ति मिलती हो, तो ऐसा परिवर्तन कहीं लाभप्रद भी हो जाता है।

(७) जिनका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया है, उनको कम-से-कम दोनों समय सन्ध्योपासन और एक माला गायत्री-जप प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये। शेष समय यदि किसीका प्रेम हो तो रामचरितमानसके पाठमें ही लगा सकता है। यह धर्मानुकूल ही है। भगवान्‌की लीलाओंका अध्ययन करनेसे बढ़कर धर्म क्या हो सकता है।

(८) मन्दिरमें खिड़की रखनेकी मनाही है या नहीं; यदि है तो क्यों ? इस बातका मुझे पता नहीं है, मेरी रायमें तो खिड़की रखनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

(९) गायत्री-मन्त्रका जप व्यक्तिगत होते हुए भी उसमें जो बहुवचनकी क्रियाका प्रयोग किया गया है, वह इस उद्देश्यसे किया गया है कि दूसरे सब भाइयोंकी भी प्रार्थना सम्मिलित समझी जाय। अतः कोई हानिकी बात नहीं है, अनुचित नहीं है।

(१०) श्रीहनूमान्‌जीके विषयमें वैज्ञानिक सिद्धान्तसे जो आपने नई पेश किया है, उसका ठीक-ठीक उत्तर समझमें नहीं आया। इसका कोई दूसरा ही अर्थ हो सकता है। सम्भव है,

वह रूप हमारी समझमें न आया हो। सूर्यलोकको कोई निगल सके—यह तो सम्भव नही।

(११) पाण्डवोंने वेष और नाम बदलकर विराटनगरमें निवास किया, इसमें न तो अधर्म था, न मिथ्या वचन ही थे, क्योंकि बारह महीनोंतक अज्ञातवास करनेकी उनकी प्रतिज्ञा थी। उसका पालन करनेके लिये उनके पुरोहितने उनको दूसरे नाम रखनेकी आज्ञा दी थी। अतः उनका इस प्रकार निवास धर्मयुक्त ही था। यदि वे किसीका बुरा करनेके लिये ऐसा करते तो धर्म नही माना जा सकता था। उनका उद्देश्य विशुद्ध था। धर्मका निर्णय क्रियाकी अपेक्षा भावपर ही अधिक निर्भर है। इसके प्रमाणस्वरूप आप देखिये—अश्वत्थामाके मारे जानेका समाचार युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यको प्रकारान्तरसे ही दिया, परन्तु वह युधिष्ठिरके लिये अधर्म माना गया। पर विराटनगरमें छिपकर रहना या नाम बदलना अधर्म नही समझा गया।

[६२]

वहिन देवीजी! सादर हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिल गया था, परन्तु समय न मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। इसके लिये किसी प्रकारका खेद नहीं करना चाहिये।

× × × ×

आपने पूछा कि गीता अठारह अध्यायका पाठ अगर पंद्रह दिनमें पूरा किया जाय तो माहात्म्यका पाठ प्रतिदिन करना चाहिये या आरम्भमे अथवा अन्तमे? उसका उत्तर यह

है कि माहात्म्यका पाठ प्रतिदिन करनेकी जरूरत नहीं है। पंद्रह दिनमें जब गीताका पाठ पूरा हो, तब किया जा सकता है। यदि भोजनसे पहले समय न मिलता हो, तो भोजनके बाद भी किसी निश्चित समयपर गीता-पाठ करनेका नियम बनाया जा सकता है।

आपने पूछा कि ऊपरकी सात बातें कौन-सी हैं, मुझे उनकी खबर नहीं है, उनका पालन कैसे करना चाहिये? इसका उत्तर है कि वे तो उसी पत्रमें ऊपर लिखी होंगी। उसीमें खोजनी चाहिये। संभवतः ये ही सात बातें होंगी।

१ भगवान्‌के नामको याद रखना, २ उनका ध्यान करना, ३ सत्संग करना, ४ सबकी यथायोग्य सेवा करना, ५ सत्य-भाषण, ६ ब्रह्मचर्यका पालन और ७ सदाचार। ये ही सात बातें हो सकती हैं।

आपने पत्रका उत्तर देनेमें देर होनेका कारण लिखा, सो मालूम हुआ। आप गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, गिरिराज, नाथद्वारा आदि तीर्थ-स्थानोंमें भ्रमण करके आयीं, सो आनन्दकी बात है। वृन्दावनमें श्रीनारायण स्वामी नहीं मिले सो मालूम हुआ। श्रीनारायण स्वामी यहाँ पधारे हुए हैं। एक या दो दिनमें उनका विचार श्रीउत्तरकाशी जानेका है।

मेरे विषयमें किसी भाईने आपसे जो बातें कहीं, सो तो उनका विश्वास है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। हाँ, यह बात अवश्य है कि यहाँ सत्सङ्गके लिये बहुत-से भाई और बहिनें इस समय इकट्ठे होते हैं। समय भगवान्‌के भजन-स्मरणमें ही अधिक व्यतीत होता है। इस कारण वातावरण

बहुत ही अच्छा रहता है। इस प्रकारके सत्सङ्गका अवसर भगवान्की दयासे ही मिलता है।

आपके पति रोज एक माला 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रको जपते हैं, सो बहुत अच्छी बात है। भगवान्के अनेक नाम हैं, उनमे जिसको जो रुचिकर हो, उसके लिये वही हितकर है। आपने लिखा कि मुझे ध्यानमें बैठना सिखाया जाता है। परन्तु बहुत समय ध्यानमें बैठना रुचिकर नहीं होता। शरीर दुखने लग जाता है। सारा दिन चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते-करते नाम-जप करना रुचता है, सो यह बहुत अच्छी बात है। प्रेमपूर्वक ऐसा करते-करते भगवान्का ध्यान भी इसी तरह हर वक्त अपने-आप होने लग जाता है। उसके लिये कोई अलग साधन नहीं करना पड़ता। निरन्तर नाम-जपमें बड़ी भारी शक्ति है।

आपने लिखा कि एक जगह बैठकर विधिके साथ मन्त्रका जप करनेसे जप बहुत थोड़ा होता है, मन टिकता नहीं। उसकी अपेक्षा भगवान्के स्वरूपके सामने विनय और विरहके कीर्तन गानेमें मन एकाग्र होता है। बहुत देरतक एक जगह नहीं बैठ सकती। अतः क्या करना चाहिये ? सो इसका जवाब यह है कि भगवान् तो प्रेमके भूखे हैं, वे जितने प्रेमसे प्रसन्न होते हैं, उतने ऊपरके उपचारोंसे नहीं होते। अतः आपको जो रुचता है, जैसे आप करती हे, वही ठीक है। मेरी रायमें आपने जो अपने साधनका ढंग लिखा है, वह आपके लिये बहुत अच्छा है। कलियुगमें भगवान्के नामकी महिमा अपार है। उससे भगवान्में प्रेम हो जाता है और प्रेमसे ही भगवान् दर्शन देते है।

आपसे जो वे कहते हैं कि अमुक विधिसे जप करनेपर देवताओंके दर्शन होंगे, उसके बाद ऐसा होगा, वैसा होगा। वे भाई आपके प्रेमभावको नहीं समझते, अतः उनकी बातको काममें नहीं लाना चाहिये। आपके मनमें जो केवल भगवान् श्रीकृष्णके ही दर्शनकी इच्छा है, दूसरे किसी देवताके दर्शन आप नहीं चाहतीं—यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। भगवान् इस बातसे बहुत प्रसन्न होते हैं।

आपको भगवान्का जो भी एक नाम अधिक-से-अधिक प्रिय लगता हो, उसीका निरन्तर जप करते रहनेकी चेष्टा रखना, हर समय भगवान्को याद रखना, अपनी दीनता और विरह-व्याकुलता भगवान्को निवेदन करते रहना और उनकी परम दयाके अनुभवकी बाट देखते रहना, उनके हरेक विधानमे मधुर कृपा भरी हुई समझकर बार-बार प्रसन्न होना और कभी किसी कारणसे उनकी विस्मृति हो जाय तो बड़ी भारी हानि समझना—ये ही साधन आपके लिये मेरी रायमें अच्छे हैं।

[६२]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! तुम्हारा पत्र यथासमय मिला, समाचार विदित हुए। तुम्हारी इच्छा भगवान्की ओर बढ़नेकी है, तो यह बड़े सौभाग्यकी बात है। इस इच्छाको तीव्र करना ही भगवान्की ओर बढ़नेका सुन्दर उपाय है।

यह सर्वथा सत्य है कि मनुष्यजीवन अमूल्य और बड़ा ही दुर्लभ है। यह भगवान्की परम कृपासे ही जीवको मिलता

है। इसका एक क्षण भी भगवान्‌की स्मृतिके विना नहीं जाने देना चाहिये। यही इसका सदुपयोग है। मनुष्यजन्मके अमूल्य समयको व्यर्थ खोना बड़ी भारी मूर्खता है।

भजनको श्रीकृष्णार्पण करनेके विषयमें पूछा सो वास्तवमें तो भजनका फल न चाहना, भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेके उद्देश्यसे या उनके दर्शनोंके लिये ही भजन करना उनके अर्पण करना ही है। मालाके अन्तमें आचमनीसे जल छोड़ना तो एक प्रकारसे मालाकी पूर्तिका संकेत है, अतः यह हरेक मालाकी पूर्तिपर किया जाना ठीक ही है। और प्रत्येक मालाके अन्तमें एक बार जल छोड़ देना ही काफी है। इस समय स्वयं आचमन करनेकी आवश्यकता नहीं है। हाँ, जब मनुष्य किसी स्थानमें वैठकर स्थिर चित्तसे भगवान्‌के नामका जप करना आरम्भ करे, तो उस समय पहले तीन बार आचमन करके और प्राणायाम करके पीछे जप करना आरम्भ करे, ऐसी रीति शास्त्रोंमें बतायी गयी है।

ध्यान और स्तोत्रके बाद जल छोड़नेकी कोई खास आवश्यकता नहीं है।

भगवान्‌को स्नान कराके विधि-विधानसे धूप-दीप आदिके द्वारा पूजन करनेके बाद पहले स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये और अन्तमें नाम-जप तथा ध्यान करना चाहिये। भगवान्‌को भोग या तो अपने हाथसे तैयार की हुई शुद्ध वस्तुका लगाना चाहिये, नहीं तो किसमिस, बादाम, मिश्री आदिका लगा देना चाहिये। बाजारमें बनी हुई मिठाईका भोग नहीं लगाना चाहिये। शामको भी भोग लगाया जाय तो अच्छी बात है। वस्त्रोंके

[६४]

महोदय !

सादर प्रेमपूर्वक हरिस्मरण । आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए । आपको हिंदी भाषा लिखनी नही आती, इस कारण अपनी शङ्काएँ उर्दूमे लिखी, सो अच्छी बात है । मैंने आपके पत्रका हिंदीमें अनुवाद कराकर पढ़ लिया है ।

× × × ×

(१) आप जो यह समझते थे कि जो कुछ भी सुख या दुःख प्राप्त होता है, वह हमारे कर्मानुसार होता है तथा जो कुछ होता है, वह ईश्वरकी ओरसे हमारे लिये अच्छा और हमारी बेहतरीके लिये ही होता है, सो यह समझना आपका बहुत ही उचित और लाभप्रद था । अतः अब भी उसे छोड़ना नही चाहिये । बल्कि अब उस निश्चयको और भी दृढ़ करना चाहिये ।

आपके दो पुत्र थे, उनमेंसे एकके मर जानेपर आपके विश्वासमें कोई अन्तर नही आया, पर इस बार दूसरे पुत्रकी मृत्युके दुःखमे आपकी विचारधारा स्थिर न रह सकी, सो ऐसा नही होना चाहिये था । परमेश्वरकी प्रत्येक क्रियामें दया भरी रहती है, वे किस प्रकार किस बहानेसे हमारा क्या हित करना चाहते हैं—यह सहज ही समझमें नही आता, क्योंकि हमारी बुद्धि मायासे ढकी हुई है । अतः जो भी सुख या दुःखकी घटना प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हो, उसमे भगवान्‌की परम दया मानकर सन्तोष रखना चाहिये और भगवान्‌के भजन-स्मरणमें पहलेसे भी अधिक मन लगाना चाहिये । ऐसा करते रहनेसे शीघ्र ही उनकी दयाका रहस्य भी किसी अंशमें समझमें आ सकता है ।

आपने लिखा कि मुझे शान्ति नहीं हुई, अभावका बोध होता है, मनमें ऐसा खेद होता है—मानो कुछ खोया गया है, सो आपका लिखना ठीक है। आसक्ति और मोहके कारण ऐसा होता है, परन्तु वास्तवमें यह किसी तरह भी उचित नही है। संसार नाशवान् है, इसका वियोग अनिवार्य है और इसमें जो सुख प्रतीत होता है, वह भी भ्रमसे ही होता है। वास्तवमें तो यह दुःखोंसे ही भरा हुआ है। अतः बड़ी-छोटी सभी प्रकारकी विपत्तियोंमें भगवान्‌की दयाका अनुभव करके संसारकी असारता और अनित्यतापर विचार करके इससे विरक्त होकर भगवान्‌में प्रेम बढ़ाना चाहिये और अपना जीवन भगवान्‌के भजन-स्मरणमें लगाकर सफल बनाना चाहिये। मनुष्य-शरीर बार-बार नहीं मिलता। समय बड़ा ही मूल्यवान् है। इसे संसारकी व्यर्थ चिन्तामें नही खोना चाहिये।

(२) आपका यह खयाल बिल्कुल ठीक है कि—प्राणी दुनियामें अपने निश्चित श्वासतक ही रहता है तथा एक दूसरेके साथ जितना सुख-दुःख-भोगका सम्बन्ध होता है, उतना भोगता है। उसके बाद अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं।

एक या दो सालका लड़का इस जन्ममें कोई पाप नही करता—यह ठीक है, परन्तु मनुष्य-जन्म मिलना और छोटी उम्रमें मर जाना यह इस जन्मके कर्मोंका फल नहीं है। यह तो उसके पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भुगताया जाता है। मनुष्य-देहका पूरा लाभ तो परमात्माकी प्राप्ति है। उसे बड़ी उम्र पानेवाले भी कहाँ उठा पाते हैं! वे भी तो ऐसे ही चले ही जाते हैं, फिर क्या किया जाय! इसमें घरवालोंका कोई दोष नहीं

है, क्योंकि मृत्युसे किसीको बचा लेना या उसकी आयु बढ़ा लेना—घरवालोंके हाथकी बात नहीं है । घरवालोंका तो यह कर्तव्य है कि अपने घरका कोई प्राणी मनुष्यशरीरको छोड़ रहा हो, तो उस समय वह चाहे कितना ही छोटा और नासमझ क्यों न हो, उसका मनुष्य-जन्म सफल बनानेमें सहायक बनें अर्थात् उसे भगवान्का नाम, गुण और प्रभाव अन्तकालतक सुनाते रहें ।

(३) आपका यह खयाल बिल्कुल ठीक है कि बिना कारण यानी बिना अपने पिछले कर्मोंके कोई भी जीव दुनियामें नहीं आता और नहीं जाता । अपने कर्मानुसार ही मनुष्य छोटी या बड़ी उम्रमें मरता है । इस विषयमें और भी जो कुछ आपने लिखा—वह भी ठीक है ।

(४) छोटे बालककी सद्गति या मुक्तिका उपाय आपने पूछा, सो इसके विषयमे मैं उसकी मृत्युके समय जो घरवालोंका कर्तव्य होता है, वह तो ऊपर लिख ही चुका हूँ । फिर भी मरनेके बाद यदि कोई उसके निमित्तसे भगवान्का भजन-स्मरण करे तो अवश्य उसकी शान्तिमें सहायक हो सकता है ।

ईश्वरपर विश्वासको दृढ़ बनानेके लिये मेरी समझमें संतोंका जीवनचरित्र पढ़ना या सुनना बहुत ही लाभप्रद है । उन्होंने किस प्रकार भगवान्पर दृढ़ विश्वास रक्खा और उसका क्या परिणाम हुआ—यह बात बार-बार कानोंमें पड़नेपर वैसा ही दृढ़ विश्वास रखनेकी उमंग मनुष्यके मनमे स्वाभाविक ही उठा करती है । इसके सिवा भगवान्के गुणानुवाद और चरित्र सुननेसे और भजन-स्मरणसे भी ईश्वरपर विश्वास बढ़ सकता है ।

आशा है कि इस उत्तरसे आपको किसी अंशमें संतोष

मिल सकेगा, और भी जो कुछ इस विषयमें पूछना हो, निःसंकोच होकर पूछ सकते है।

[६५]

महोदय! सादर विनयपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। आप मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम लिखते है—और अन्यान्य वहुत-से बड़ाईके शब्दोंका प्रयोग करते है—यह सर्वथा अनुचित है। ऐसा नही करना चाहिये। मै तो एक साधारण वैश्य हूँ, आप ब्राह्मण हैं—इस तरहके समाचार लिखकर मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये।

(१) आपने जो संतोंकी वड़ाई लिखी वह तो उचित ही है, परन्तु इस प्रकारके संत मिलने ही कठिन है। अगर आप मुझे ही वैसे संतोंका स्थान देकर ऐसे समाचार लिखते हों तो वैसा संत मै नहीं हूँ। किसीको आज्ञा देनेका या उपदेश देनेका मेरा अधिकार नहीं है। प्रेमी भाई लोग सत्सङ्गके लिये मेरे पास आते हैं, इससे तो मुझे भी लाभ ही है, क्योंकि इस वहाने भगवान्‌के गुणानुवाद और चरित्र सुनने और कहनेका शुभ अवसर मिल जाता है। अतः इसे मै उन सत्सङ्गी भाइयोंकी और भगवान्‌की दया मानता हूँ। आप मेरा सङ्ग चाहते हैं, यह आपके प्रेमकी वात है।

गया है। इस समय तो समस्त गुरुओंके गुरु परम पिता परमेश्वरको ही अपना गुरु और पथप्रदर्शक मानकर और सदाचारी सत्सङ्गी भाइयोंका परामर्श लेकर गीतादिमें लिखी हुई भगवान्की आज्ञाके अनुसार तत्परतासे साधनमें लग जाना ही श्रेयस्कर है। आपने मेरी शरण लेनेकी बात लिखी सो शरण तो भगवान्की लेनी चाहिये। न तो मुझमें किसीको शरण देनेकी सामर्थ्य है और न अधिकार ही।

(३) सांसारिक कार्योंको भजनमें बाधक लिखा, सो वास्तवमें कार्य बाधक नही हैं। बाधक है विषयोंकी आसक्ति। अतः उससे छूटनेके लिये भगवान्के नाम-जपका अभ्यास करना चाहिये। भगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र सुनने और पढ़ने चाहिये। निष्कामभावसे दुखियोंकी सेवा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे जैसे-जैसे अन्तःकरण शुद्ध होता जायगा, वैसे-वैसे साधन बढ़ता जायगा और साधनमें रस आने लगेगा, फिर साधन कठिन नहीं मालूम होगा।

(४) साधनके लिये घर छोड़कर संन्यासी बननेमे कोई लाभ नहीं है। जबतक मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति है, वह चाहे घरमें रहे, चाहे वनमे, कभी शान्ति नहीं मिल सकती। अतः घरमें रहकर ही उपर्युक्त प्रकारसे तत्परताके साथ साधन करना चाहिये।

(५) कामदेवके आक्रमणके विषयमें लिखा, सो इसकी शान्ति भगवान्का भजन करनेसे और विषयोंमें वैराग्य होनेपर ही हो सकती है। व्यभिचार बड़ा भारी पाप है, इसलिये यदि किसी प्रकार भी सदाचारमें कलङ्क लगनेका डर हो तो विवाह न करनेकी अपेक्षा विवाह कर लेना अच्छा है।

मिल सकेगा, और भी जो कुछ इस विषयमें पूछना हो, निःसंकोच होकर पूछ सकते हैं।

[६५]

महोदय ! सादर विनयपूर्वक हरिस्मरण । आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए । आप मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम लिखते हैं—और अन्यान्य बहुत-से बड़ाईके शब्दोंका प्रयोग करते हैं—यह सर्वथा अनुचित है। ऐसा नहीं करना चाहिये । मैं तो एक साधारण वैश्य हूँ, आप ब्राह्मण हैं—इस तरहके समाचार लिखकर मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये।

(१) आपने जो संतोंकी बड़ाई लिखी वह तो उचित ही है, परन्तु इस प्रकारके संत मिलने ही कठिन हैं। अगर आप मुझे ही वैसे संतोंका स्थान देकर ऐसे समाचार लिखते हों तो वैसा संत मैं नहीं हूँ। किसीको आज्ञा देनेका या उपदेश देनेका मेरा अधिकार नहीं है । प्रेमी भाई लोग सत्सङ्गके लिये मेरे पास आते हैं, इससे तो मुझे भी लाभ ही है, क्योंकि इस बहाने भगवान्के गुणानुवाद और चरित्र सुनने और कहनेका शुभ अवसर मिल जाता है । अतः इसे मैं उन सत्सङ्गी भाइयोंकी और भगवान्की दया मानता हूँ । आप मेरा सङ्ग चाहते हैं, यह आपके प्रेमकी बात है।

(२) आपने लिखा कि 'बिन गुरु भवनिधि तरे न कोई'; साथ ही यह भी लिखा कि मुझे कोई सद्गुरु नहीं मिला, सो ठीक है; किन्तु यह समय बड़ा ही विकट है। इस घोर कलिकालमें प्रथम तो श्रेष्ठ महापुरुष संसारमें ही बहुत कम हैं और जो हैं, उनको पहचानना बड़ा कठिन है, क्योंकि दम्भ बहुत बढ़

गया है। इस समय तो समस्त गुरुओंके गुरु परम पिता परमेश्वरको ही अपना गुरु और पथप्रदर्शक मानकर और सदाचारी सत्सङ्गी भाइयोंका परामर्श लेकर गीतादिमें लिखी हुई भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार तत्परतासे साधनमें लग जाना ही श्रेयस्कर है। आपने मेरी शरण लेनेकी बात लिखी सो शरण तो भगवान्‌की लेनी चाहिये। न तो मुझमें किसीको शरण देनेकी सामर्थ्य है और न अधिकार ही।

(३) सांसारिक कार्योंको भजनमें बाधक लिखा, सो वास्तवमें कार्य बाधक नहीं हैं। बाधक है विषयोंकी आसक्ति। अतः उससे छूटनेके लिये भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास करना चाहिये। भगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र सुनने और पढ़ने चाहिये। निष्कामभावसे दुखियोंकी सेवा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे जैसे-जैसे अन्तःकरण शुद्ध होता जायगा, वैसे-वैसे साधन बढ़ता जायगा और साधनमें रस आने लगेगा, फिर साधन कठिन नहीं मालूम होगा।

(४) साधनके लिये घर छोड़कर संन्यासी बननेमें कोई लाभ नहीं है। जबतक मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति है, वह चाहे घरमें रहे, चाहे वनमें, कभी शान्ति नहीं मिल सकती। अतः घरमें रहकर ही उपर्युक्त प्रकारसे तत्परताके साथ साधन करना चाहिये।

(५) कामदेवके आक्रमणके विषयमें लिखा, सो इसकी शान्ति भगवान्‌का भजन करनेसे और विषयोंमें वैराग्य होनेपर ही हो सकती है। व्यभिचार बड़ा भारी पाप है, इसलिये यदि किसी प्रकार भी सदाचारमें कलङ्क लगनेका डर हो तो विवाह न करनेकी अपेक्षा विवाह कर लेना अच्छा है।

(६) मित्रका क्या कार्य है, उसके लिये आप चिन्तित क्यों हैं ? यह पूरी बात समझमें नहीं आयी। बिना समझे मैं क्या सलाह दे सकता हूँ। भगवान्‌की ही कृपाका भरोसा रखना चाहिये। प्रार्थना भी भगवान्‌से ही करनी चाहिये। मैं न तो भगवान् हूँ और न इस प्रकारका महात्मा ही कि जिसके सामने प्रार्थना करनेमात्रसे किसीका कार्य पूर्ण हो जाय। अतः आपसे यही प्रार्थना है कि भगवान्‌पर विश्वास बढ़ाना चाहिये और उन्हींसे प्रार्थना करनी चाहिये। वे परम समर्थ हैं, सब कुछ कर सकते हैं। जरूरत है प्रेम और विश्वासकी।

---

[६६]

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। आप मुझसे अपने संशयकी निवृत्ति कराना चाहते हैं और साथ ही रामचरितमानसके शब्दोंमें यह भी लिखते हैं-'तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना।' किन्तु आपको मेरे लिये इस प्रकारके शब्द नहीं लिखने चाहिये। मैं न तो 'प्रभु' कहलानेका अधिकारी हूँ और न किसीका अज्ञान दूर करनेकी ही मुझमें शक्ति है। मैं तो एक साधारण वैश्य हूँ। अवश्य ही विनयपूर्वक आपके प्रश्नोंका उत्तर अपनी बुद्धिके अनुसार देनेकी चेष्टा करता हूँ। यदि इससे आपका कुछ भी समाधान हुआ तो मुझे संतोष होगा।

(१) आपने श्रीरामचरितमानसकी प्रशंसामें जो कुछ लिखा, वह ठीक ही है। आपका यह भी लिखना ठीक है कि 'रामचरितमानसके एक-दूसरेसे भिन्न अनेकों संस्करण छप चुके हैं और सभी अपनी-अपनी दृष्टिसे ठीक हैं। ऐसी दशामें किसके सम्बन्धमें यह कहा जाय कि वह ठीक गोस्वामीजीकी

प्रतिके अनुसार है ?' क्षेपकोंने तो इस प्रश्नको और भी जटिल बना दिया है। आपने लिखा कि 'यदि कोई इन क्षेपकोंके सहित रामचरितमानसका पाठ करता है तो क्या उसे रामचरितमानसके पाठका फल नहीं मिलेगा ?' इसका उत्तर यह है कि अपनी समझसे जो शुद्ध-से-शुद्ध क्षेपकरहित संस्करण हो, उसीका पाठ करना चाहिये। यद्यपि क्षेपकसहित पाठ करनेमें कोई हानि तो नहीं प्रतीत होती, तथापि जहाँ अपने मनमें यह निश्चय हो कि अमुक पाठ क्षेपक है, वहाँ उसका पाठ न करना ही अच्छा है; क्योंकि उससे पाठ खण्डित तो हो ही जाता है। क्षेपक-प्रकरण चाहे शास्त्रानुकूल ही क्यों न हों, वे तुलसीदासजीकी कृति न होनेके कारण रामचरितमानसके अङ्ग तो हो नहीं सकते। ऐसी दशामें जो रामचरितमानसका पाठ करना चाहते हैं, वे रामचरितमानसके बाहरकी चीजका पाठ उसके साथ क्यों करेंगे। आशा है यह बात सहज ही आपकी समझमें आ जायगी।

रही यह बात कि क्षेपक जोड़नेवालोंने न्याय किया या अन्याय, तो इसका भी उत्तर स्पष्ट ही है। जो बात किसी ग्रन्थमें है ही नहीं, उसे अपनी ओरसे उसमें जोड़ देना और उसे ग्रन्थकारकी ही रचना कहकर प्रसिद्ध करना न्यायसङ्गत कैसे कहा जा सकता है। स्वामीकी दृष्टिमें उनका यह अपराध क्षम्य है या अक्षम्य, इसे तो स्वामी ही जानें मैं इस विषयमें क्या कह सकता हूँ। इतनी बात इस सम्बन्धमें अवश्य कही जा सकती है कि यदि कोई अपने अपराधको अपराध समझकर उसे प्रभुसे क्षमा कराना चाहे तो उसे वे अवश्य क्षमा कर देते हैं, चाहे उसका वह अपराध दूसरोंकी दृष्टिमें कितना ही अक्षम्य क्यों न हो।

(२) दूसरी बात आपने यह लिखी है कि 'गीता, भागवत

तथा रामचरितमानस आदि ग्रन्थोंमें केवल अधिकारियोंको ही इन ग्रन्थोंको सुनानेकी आज्ञा दी गयी है, ऐसी स्थितिमें यत्र-तत्र सर्वसाधारणके सामने इन ग्रन्थोंकी कथा कहना तथा इन्हें मुद्रित एवं प्रकाशित कराके थोड़े मूल्यपर जनसाधारणके हाथों बेचना और इस प्रकार अधिकारी-अनधिकारी—सबके लिये सुलभ बना देना कहाँतक ठीक है और ऐसा करनेसे क्या इन ग्रन्थोंका आदर होनेकी अपेक्षा अनादर अधिक नहीं होता ?' आपका ऐसा लिखना शास्त्रीय दृष्टिसे बिल्कुल यथार्थ है। वास्तवमें इन ग्रन्थोंका उपदेश तथा प्रवचन अधिकारी भक्तोंके सामने ही होना चाहिये और अधिकारी लोगोंके हाथोंमें ही इन ग्रन्थोंको देना भी चाहिये। परन्तु वर्तमान युग नास्तिकताका युग है। इस युगमें इन ग्रन्थोंका साधारण-सा प्रेमी भी इनका अधिकारी ही माना जाना चाहिये। वैसे अधिकारी, जिनका शास्त्रोंमें उल्लेख मिलता है, इस युगमें मिलने बहुत ही कठिन हैं।

दूसरी बात यह है कि आप जानते हैं, वर्तमान युग प्रचारका युग है। इस समय सब लोग अपना-अपना प्रचार करनेमें लगे हुए हैं। कोई भी इस मामलेमें पीछे नहीं रहना चाहता। ऐसे समयमें जब चारों ओर प्रचारकी धूम मची है, हमलोगोंके लिये इस दिशामें पीछे रहना बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकता। इस युगमें प्रचारके सबसे बड़े साधन हैं—प्रेस (पुस्तक तथा समाचारपत्र आदि) और व्याख्यान-मञ्च। सब लोग इन साधनोंका अधिक-से-अधिक उपयोग कर रहे हैं। ऐसी दशामे हमलोग भी यदि उक्त साधनोंका उपयोग न करें तो इसका परिणाम यह होगा कि जगत्में दूसरे-दूसरे सिद्धान्तों तथा ग्रन्थोंका तो यथेष्ट प्रचार होगा और हम अपने सिद्धान्तों तथा

धर्मग्रन्थोंको जगत्के सामने नहीं रख सकेंगे, जिससे हमीं लोग घाटेमें रहेंगे, इसलिये वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए इन ग्रन्थोंका जनसाधारणमें प्रचार हानिकारक नहीं कहा जा सकता।

[६७]

आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा कि 'मैं अपने एक सम्बन्धीके यहाँ मुनीम हूँ। वे सदासे मेरे साथ बड़े प्रेम और सहानुभूतिका वर्ताव करते रहे हैं। इस समय उनका फर्म घाटेमें है, इसलिये वे अपने एक व्यापारीका रुपया मार लेनेकी नीयतसे मुझसे नकली जमा-खर्च करनेका आग्रह कर रहे हैं, ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये ?' इस विषयमें मैं तो स्पष्ट कहूँगा कि आपको उनकी वात नहीं माननी चाहिये। उनकी वात न मानकर आप स्वयं ही इस पापसे नहीं बचेंगे, उन्हें भी एक भारी अनर्थसे बचा लेंगे। कैसे आश्चर्यकी वात है! व्यापारी भाई रात-दिन देखते हैं कि अनेकों कार्य-कुशल और लाखोंकी सम्पत्ति रखनेवाले व्यापारी वात-की-वातमें दीवालिये हो जाते हैं और बहुत-से भोले-भाले भाई कर्जसे दवे होनेपर भी कुछ ही दिनोंमें मालामाल हो जाते हैं। यह देखकर भी उन्हें ईश्वर और प्रारब्धपर विश्वास नहीं होता और अपनी बुद्धिमानीपर भरोसा करके वेईमानी और धोखेवाजी करनेसे नहीं चूकते। भाई! मिलेगा तो वही, जो तुम्हें मिलना है। व्यर्थ पापका वोझा अपने सिरपर लादकर नरकका रास्ता क्यों बनाते हो। यह वात निश्चित है कि धन आदि लौकिक सुख भी पुण्यके ही परिणाम हैं, पापका फल तो सर्वदा दुःख ही है। इसलिये किसी दुःखसे बचनेके लिये पाप करना तो दुःखको और भी

बढ़ाना है। ऐसे पापकर्मसे रोकनेमें जो पुरुष सहायता करता है, वह तो सच्चा शुभचिन्तक है। इसलिये इस पापकर्मको न करनेके कारण यदि आपको अपने मालिकके रोषका पात्र भी होना पड़े तो कोई चिन्ता नहीं। आपका कर्तव्य उन्हें नरकमें जानेसे बचाना ही है। देखिये, प्रह्लादजीने तो अन्याययुक्त होनेके कारण अपने पिताकी भी बात नहीं मानी, फिर आपको अपने मालिककी ऐसी बात माननेकी सलाह कैसे दी जा सकती है? अतः इस समय मोहको दूर रखकर अपने सच्चे कर्तव्यका ही पालन करना चाहिये।

[६८]

आपका कृपापत्र मिला। आपने मुझसे जो प्रश्न पूछे हैं, वे बड़े गूढ़ हैं। अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार मैं उनके उत्तर नीचे लिखता हूँ। यदि इनसे आपका कुछ सन्तोष हो सका तो बड़ी प्रसन्नताकी बात होगी।

(१) आपने पूछा कि सुषुप्ति-कालमें सच्चिदानन्दांश आत्मा किस रूपमें अपनेको अनुभव करता है, सो उस समय तो अन्तःकरण अपने कारणभूत अज्ञानमें लीन रहता है। आत्माका स्वभाव है कि वह अन्तःकरणकी वृत्तियोंके अनुरूप ही प्रतीत होता है। अतः अविद्यासे आवृत होनेके कारण उस समय उसका अविद्याविशिष्ट रूप ही अनुभवमें आता है। वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है।

(२) सम्पूर्ण जगत्‌का निमित्त और उपादान कारण ब्रह्म ही है, इसमें सन्देह नहीं। अतः आत्म-अनात्मा सब कुछ वस्तुतः सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही है। जड जगत् भी परमात्माका ही स्वरूप है। अतः धातु या पत्थरकी प्रतिमाओंमें भी भगवद्‌बुद्धि रखकर उनकी उपासना करना उचित ही है।

वह भी भगवत्साक्षात्कारका एक बड़ा ही सुलभ साधन है।

(३) वैष्णवलोग तो अर्चाविग्रहोंको साक्षात् भगवत्स्वरूप ही मानते हैं। शाङ्कर-सिद्धान्तमें भी भगवद्भक्ति आत्मसाक्षात्कारका एक परम्परा-साधन मानी गयी है। अतः उपासनाका अङ्ग होनेके कारण उस सम्प्रदायमें भी अर्चाविग्रहोंका बड़ा आदर है। इस सम्प्रदायके मठोंमे भी पञ्चदेवोंकी उपासना होती है।

(४) गीताका जो चरम सिद्धान्त है, वह निश्चय ही संसारके सब धर्मोंको मान्य है। वे भी किसी-न-किसी रूपमें उसीको अपना अन्तिम ध्येय मानते हैं। गीताने 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' (३।३५)—इस श्लोकसे जिस परधर्मकी चर्चा की है, वह तो एक वर्णकी अपेक्षासे वर्णान्तरका धर्म समझना चाहिये। गीताका चरम सिद्धान्त किसी भी व्यक्ति या जातिका धर्म नहीं है। अतः उसे केवल हिंदू-सनातनधर्मका भी अङ्ग नहीं कह सकते। वह तो वह वस्तु है, जिसके लिये संसारके सारे धर्मपथ प्रवृत्त हुए हैं और जो सभीका गन्तव्य स्थान है। अतः उसे केवल सनातनधर्मका अङ्ग समझकर आपने जो पूछा है कि संसारके अन्य धर्मोंके सामने गीताके इस श्लोकके अनुसार हिंदू सनातनधर्मका क्या स्थान है, वह प्रश्न ही नहीं बनता।

(५) आपका यह विचार बहुत ठीक है कि यह स्थिति मनुष्यको चाहे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या अवस्थामें प्राप्त हो जाय, उसका अवश्य कल्याण हो जायगा। ईसाई, मुसल्मान आदि अन्यधर्मावलम्बी भी अपनी पद्धतिके अनुसार उपासना करते हुए यदि परमात्मप्राप्तिरूप इस उच्चतम पदका साक्षात्कार कर लें तो वे अवश्य मुक्त हो जायँगे। इस पदकी प्राप्तिके लिये हिंदू होना ही अनिवार्य नहीं है।

बढ़ाना है। ऐसे पापकर्मसे रोकनेमें जो पुरुष सहायता
वह तो सच्चा शुभचिन्तक है। इसलिये इस पापकर्मको न
कारण यदि आपको अपने मालिकके रोषका पात्र भी होन
कोई चिन्ता नहीं। आपका कर्तव्य उन्हें नरकमें जानेसे बचान
देखिये, प्रह्लादजीने तो अन्याययुक्त होनेके कारण अपने पित
बात नही मानी, फिर आपको अपने मालिककी ऐसी बात
की सलाह कैसे दी जा सकती है? अतः इस समय मोहव
रखकर अपने सच्चे कर्तव्यका ही पालन करना चाहिये।

[६८]

आपका कृपापत्र मिला। आपने मुझसे जो प्रश्न पूछे वे बड़े गूढ़ हैं। अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार मैं उनके उत्त नीचे लिखता हूँ। यदि इनसे आपका कुछ सन्तोष हो सका त बड़ी प्रसन्नताकी बात होगी।

(१) आपने पूछा कि सुषुप्ति-कालमें सच्चिदानन्दांश आत्मा किस रूपमें अपनेको अनुभव करता है, सो उस समय तो अन्तःकरण अपने कारणभूत अज्ञानमें लीन रहता है। आत्माका स्वभाव है कि वह अन्तःकरणकी वृत्तियोंके अनुरूप ही प्रतीत होता है। अतः अविद्यासे आवृत होनेके कारण उस समय उसका अविद्याविशिष्ट रूप ही अनुभवमें आता है। वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है।

(२) सम्पूर्ण जगत्का निमित्त और उपादान कारण ई ही है, इसमें सन्देह नहीं। अतः आत्मा-अनात्मा सब वस्तुतः सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही है। जड जगत परमात्माका ही स्वरूप है। अतः धातु या पत्थरकी भी भगवद्बुद्धि रखकर उनकी उपासना करना उचित ही

वह भी भगवत्साक्षात्कारका एक बड़ा ही मुख्य साधन है ।

(३) वैष्णवलोग तो अर्चाविग्रहोंको साक्षात् भगवत्स्वरूप ही मानते हैं । शाङ्कर-सिद्धान्तमें भी भगवद्भक्ति आत्मसाक्षात्कार-का एक परम्परा-साधन मानी गयी है । अतः उपासनाका अङ्ग होनेके कारण उस सम्प्रदायमें भी अर्चाविग्रहोंका बड़ा आदर है । इस सम्प्रदायके मठोंमें भी पञ्चदेवोंकी उपासना होती है ।

(४) गीताका जो चरम सिद्धान्त है, वह निश्चय ही संसारके सब धर्मोंको मान्य है । वे भी किसी-न-किसी रूपमें उसीको अपना अन्तिम ध्येय मानते हैं । गीताने 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' (३।३५)—इस श्लोकमें जिस परधर्मकी चर्चा की है, वह तो एक वर्णकी अपेक्षासे वर्णान्तरका धर्म समझना चाहिये । गीताका चरम सिद्धान्त किसी भी व्यक्ति या जातिका धर्म नहीं है । अतः उसे केवल हिंदू-सनातनधर्मका भी अङ्ग नहीं कह सकते । वह तो वह वस्तु है, जिसके लिये संसारके सारे धर्मपथ प्रवृत्त हुए हैं और जो सभीका गन्तव्य स्थान है । अतः उसे केवल सनातनधर्मका अङ्ग समझकर आपने जो पूछा है कि संसारके अन्य धर्मोंके सामने गीताके इस श्लोकके अनुसार हिंदू सनातनधर्मका क्या स्थान है, वह प्रश्न ही नहीं बनता ।

(५) आपका यह विचार बहुत ठीक है कि यह स्थिति मनुष्यको चाहे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या अवस्थामें प्राप्त हो जाय, उसका अवश्य कल्याण हो जायगा । ईसाई, मुसल्मान आदि अन्यधर्मावलम्बी भी अपनी पद्धतिके अनुसार उपासना करते हुए यदि परमात्मप्राप्तिरूप इस उच्चतम पदका साक्षात्कार कर लें तो वे अवश्य मुक्त हो जायँगे । इस पदकी प्राप्तिके लिये हिंदू होना ही अनिवार्य नहीं है ।

[६९]

आपका कृपापत्र मिला। उत्तर देनेमें बहुत देरी हो गयी, कृपया क्षमा कीजियेगा। आपने अपनी शङ्काएँ लिखते हुए बहुत संकोच प्रकट किया है, किन्तु इसमें संकोचकी क्या बात है। मैं तो इसे आपकी बड़ी कृपा मानता हूँ, क्योंकि इसी बहाने मुझे कुछ भगवच्चर्चा करनेका अवसर मिल जाता है। आपने जो-जो बातें पूछी हैं, उनके उत्तर मैं संक्षेपमें नीचे लिखता हूँ—

(१) यह ठीक है कि प्रकटरूपसे भजन करनेकी अपेक्षा गुप्तरूपसे मन-ही-मन भगवान्‌का नाम जपना अधिक अच्छा है; परन्तु सब लोग ऐसा कर नहीं सकते। जिन्हें मानसिक जपका अभ्यास नहीं होता, वे प्रायः उसमें असफल ही रहते हैं। इसलिये आरम्भमें तो जोर-जोरसे भगवन्नामकीर्तन करना और मालासे जप करना ही उचित है। साधकको दूसरोंके हँसी-मजाक या कहने-सुननेपर ध्यान नहीं देना चाहिये। यह मजाक तो थोड़े दिनोंमें ही समाप्त हो सकता है। कुछ मनचले मित्रलोग भी आरम्भमें ही ऐसा विघ्न उपस्थित करते हैं, पीछे वे भी शान्त हो जाते हैं। जो लोग वास्तवमें भजनकी आवश्यकता समझते हैं, वे ऐसे विघ्नोंकी परवा नहीं करते। आप मन-ही-मन भगवान्‌का नाम लेते हैं, यह भी ठीक ही है। यदि भगवद्-दर्शनके लिये आपकी लालसा दिनोंदिन बढ़ रही है तो और क्या चाहिये? भगवान्‌के दर्शनोंके बिना जीवन भार मालूम होने लगे, तभी वे दर्शन देते हैं। अतः इस लालसाको आप खूब बढ़ाइये।

(२) आप एक साथ ही राम-सीता, राधे-कृष्ण, विष्णु-गोविन्द—इन सब नामोंका जप करते हैं, सो ठीक है। यद्यपि ...स्तव भगवान्‌के विभिन्न रूपोंमें कोई भेद नहीं है, तथापि यदि

आप उनका दर्शन करना चाहते हैं तो जिस रूपमें आप उन्हें देखनेकी लालसा रखते हों उसीसे सम्बन्ध रखनेवाले नामोंका जप करना अधिक श्रेयस्कर होगा। उनमे भी यदि केवल एक ही नामको जपा जाय तो और भी अच्छा होगा।

[७०]

मई मासमें ही आपके दो कृपापत्र मिले। मुझमे तो ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं है जो किसीको शरणमें ले सकूँ। आपको मेरे लेख प्रिय लगते हैं, यह आपके ही प्रेम और श्रद्धाकी बात है। आपका अनुराग भगवान्‌के साकार स्वरूपकी अपेक्षा निराकारमें अधिक है, तो इसमें कोई आपत्ति नही है, किन्तु निश्चय यही रहना चाहिये कि भगवान् साकार भी है और निराकार भी। भगवान्‌को किसी एक ही रूपमें बाँध देना भूल है। वे तो सब कुछ हैं और सबसे परे भी हैं। अतः उन्हें किसी एक ही रूप या नियममें नही बाँधा जा सकता।

आपने पूछा कि 'भगवान् तो अनन्त स्वतन्त्र परमात्मा हैं, वे प्रेमबन्धनमें कैसे बँधें ?' सो उनका यह अद्भुत स्वभाव है। वे परम स्वतन्त्र होते हुए भी तरह-तरहकी लीलाएँ करते हैं। उनसे प्रेम करनेका एक ही उपाय है, वह यह कि उन्हींके हो जाओ। हम अज्ञानवश अपने सांसारिक सम्बन्धोंमें फँसे हुए हैं और इन मोहमय सम्बन्धोंके कारण ही प्रभुको भूले हुए हैं। यदि किसी प्रकार हमारे अंदर यह विवेक जाग्रत् हो जाय कि संसारके सारे सम्बन्ध हमारे माने हुए और मिथ्या है, हमारे सच्चे सखा और सम्बन्धी तो श्रीहरि ही हैं, तो हमारा सारा जीवन उन्हींके लिये हो जायगा। आज हम स्त्री, पुत्र और

धनादिके लिये ही अपनी सारी शक्ति नष्ट कर रहे हैं । यदि प्रभुसे नाता जुड़ जाय तो हमारी वह शक्ति उन्हींकी ओर लग जायगी । फिर हम जो कुछ करेंगे उन्हींके लिये करेंगे, जहाँ देखेंगे उन्हींको देखेंगे और अपना सब कुछ उन्हींके चरणोंपर निछावर कर देंगे । इस प्रकार जब हम सर्वत्र भगवद्दृष्टि और भगवत्कर्मके द्वारा श्रीभगवान्‌को ही आत्मसमर्पण कर देंगे तो प्रभु ही हमारे सर्वस्व हो जायँगे । उनकी तो यह बान ही है कि 'उन्हें जो जिस प्रकार भजता है, वे भी उसे उसी प्रकार भजते हैं' (गीता ४ । ११) अतः जब हम उन्हें आत्मसमर्पण करेंगे, तब वे भी अपनेको हमारे अधीन कर देंगे । इस प्रकार अनन्यभावसे प्रभुको आत्मसमर्पण करना ही उन्हें अपने अधीन करनेका प्रधान साधन है, इसीके द्वारा वे अनन्त और स्वतन्त्र परमात्मा भक्तके प्रेमबन्धनमें बँधते हैं ।

[७१]

सादर हरिस्मरण । आपका २२ जूनका कृपापत्र मिला । आजकल बुद्धिवादका युग है, इसका आपके ऊपर भी प्रभाव पड़ा है तथा इससे आपको खेद भी है—यह मालूम हुआ । यह सब होते हुए भी आप ईश्वरमें विश्वास रखते हैं, नित्यप्रति २५,००० प्रणव-मन्त्रका जप और गीतापाठ एवं सत्सङ्गादि भी करते हैं—यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है । आपका आचार और मूर्त्तिपूजनमें विश्वास नहीं है, तथापि आप उसका विरोध नहीं करते—यह बहुत अच्छा है । लोकमें सब साधन सबके लिये नहीं होते । तथापि कोई साधन अपने लिये उपयोगी न होनेपर भी दूसरोंके लिये बहुत लाभदायक हो सकता है । इसलिये उसका विरोध नहीं करना चाहिये ।

आप लिखते हैं कि मेरा सच्चा झगड़ा साकार-निराकारका है। यह ठीक है कि कई बार भगवन्मूर्त्तिका दर्शन अपनी भावनाके अनुसार भी होता है, तथापि ऐसा नहीं समझना चाहिये कि भगवान्का कोई साकार स्वरूप है ही नहीं। यदि आप सूक्ष्मतासे विचार करेंगे तो संसारमें ऐसा कोई भी मूर्त्त पदार्थ नहीं है, जो साकार-निराकार उभयरूप न हो। साकारका अर्थ है इन्द्रियग्राह्य और निराकारका अर्थ है इन्द्रियातीत। वास्तवमें सभी इन्द्रियगोचर पदार्थ कारणावस्थामें इन्द्रियातीत हैं। देखिये, रसतन्मात्रा ही जल और वरफ वन जाती है। जिस समय वह वरफके रूपमें है, उस समय भी उसमे सूक्ष्मरूपसे रसतन्मात्रताका अभाव नहीं है। हमारी नेत्रेन्द्रिय स्थूल है, इसलिये उसका उसे स्थूलरूप ही दिखायी देता है। इसी प्रकार जो पर्वत-वृक्षादि अत्यन्त स्थूल जान पड़ते हैं, मूलतः पे गन्धादि तन्मात्राओंके ही परिणत रूप हैं। इस प्रकार सारा स्थूल प्रपञ्च मूलतः इस समय भी पञ्चभूततन्मात्राओंके सिवा और कुछ नहीं है। इस वातको आप स्वप्नके दृष्टान्तसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। स्वप्नावस्थामें सब पदार्थ स्थूल-से जान पड़ते हैं, परन्तु वास्तवमें वे मनःकल्पित होनेके कारण सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं। वहाँ भी वे स्वप्न-परिकल्पित इन्द्रियोंके विषय होनेके कारण स्थूल जान पड़ते हैं। इस प्रकार जैसे स्वप्नावस्थाके पदार्थ स्थूल दिखायी देते हुए भी उसी कालमें सूक्ष्म भी हैं, उसी प्रकार जाग्रत् पदार्थ भी एक ही कालमें स्थूल भी है और सूक्ष्म भी। ये सूक्ष्मतन्मात्र भी मूलतः अहंकार तथा महत्तत्त्वके क्रमसे अव्यक्त प्रकृति ही हैं।

इस प्रकार जब ये वाह्य दृश्य पदार्थ एक ही कालमें साकार

आयु सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना. |
रस्याः स्निग्धा. स्थिरा हृद्या आहारा. सात्त्विकप्रिया ॥
(१७ । ८)

'आयु, बुद्धि, बल (मानसिक और शारीरिक शक्ति) आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।' इस प्रकार घी, दूध, ताजे फल, गेहूँ, चावल, मूँग तथा शाक-तरकारी आदि जो सुपाच्य और शक्तिवर्धक पदार्थ हैं, इस कोटिमें आ सकते हैं।

(४) यदि पढ़नेमें मन न लगे तो भी नियमपूर्वक पढ़ते ही रहना चाहिये। जो काम नियमपूर्वक किया जाता है, उसमें धीरे-धीरे मन भी लगने ही लगता है। अतः नियमपूर्वक अभ्यास करना ही मनके लगनेका एकमात्र साधन है।

(५) आपने 'जौं मम चरन सकहि सठ टारी। फिरहिं राम सीता मैं हारी॥' इस चौपाईका उल्लेख करते हुए पूछा कि अङ्गदजीको रावणके सामने ऐसी बात कहनेका क्या अधिकार था, सो इसका सीधा अर्थ तो यह है कि यदि कोई दुष्ट मेरे पैरको उठा सकेगा तो राम और सीता तो लौट ही जायँगे, मैं हार जाऊँगा। ऐसा कहनेमें तो कोई अधिकारका प्रश्न है ही नहीं। यदि इसका ऐसा अर्थ भी कोई माने कि श्रीरामजी लौट जायँगे और मैं सीताजीको हार जाऊँगा, तो इसमें श्रीअङ्गदजीका दृढ़ आत्मविश्वास ही कारण है। उन्हें निश्चय था कि कोई भी राक्षस मेरा पैर उठा नहीं सकेगा, इसीसे उन्होंने ऐसी बात कह डाली।

आपके प्रश्नोंके उत्तरमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है, सम्भव है, उससे आपको कुछ सन्तोष हो सकेगा।